

उों संविच्छक्त्यै नमः ।।

श्री
पञ्चस्तवी

पदच्छेद–अन्वय
और
सरल भाषा टीका सहित

असंख्यैः प्राचीनैर्जननि जननैः कर्मविलया-
द्गते जन्मन्यन्तं गुरुवपुषमासाद्य गिरिशम् ।
अवाप्याज्ञां शैवीं श्रमतनुरपि त्वां विदितवान्
नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचनेनैव दिवसान् ।।

संपादक तथा प्रकाशक
श्री राम शैव (त्रिक) आश्रम
फतेहकदल–श्रीनगर
(गोल गुजराल, जम्मू)

सं० १९९७

तृतीय संस्करण : १०००   मूल्य : २० रुपये

भूमिका

श्रीराम शैवाश्रम, फतेकदल श्रीनगर (गोल गुजराल, जम्मू) जनता की आकांक्षाओं, भावनाओं एवं मांग को प्राथमिकता देकर पुनः पञ्चस्तवी का तृतीय संस्करण प्रकाशित कर रहा है। निस्संदेह यह हर्ष का विषय है। वास्तव में पञ्चस्तवी का अस्तित्व कश्मीरी हिन्दू जनता के लिए धर्मप्राण प्रेरणा का अचल स्रोत है। अपनी गोत्यात्मकता के फलस्वरूप इसका स्थान समस्त कश्मीर में अद्वितीय है और इसकी आकर्षण शक्ति चुम्बक से भी अधिक महान है। इस ग्रन्थ के रचनाकार के विषय में विद्वानों के विभिन्न मत है।

श्री लक्ष्मीधर ने सौन्दर्यलहरी की टीका में पञ्चस्तवी का एक श्लोक उद्धृत करके उस श्लोक को कालिदास का माना है। अतः उनकी दृष्टि से इस ग्रन्थ के रचनाकार - कालिदास है। कइयों का मत है कि इसके रचयिता स्वयं अभिनवगुप्त हैं।

त्रिविड्म संस्कृत सिरीज में पञ्चस्तवी का प्रथम स्तव—लघुस्तव का प्रकाशन हुआ है और इसके ग्रन्थकार का नाम लघुभट्टाचार्य लिखा है तथा साक्ष्य के आधार पर पंचस्तवी के इकीसवें श्लोक के तीसरे चरण—"लघुत्वमात्मनि दृढं" को उद्धृत किया है। पर इस से लघुभट्टाचार्य द्वारा रचित होने का कोई सशक्त साक्ष्य नहीं मिलता है क्योंकि पद्याश का अर्थ किसी भी रूप में व्यक्तिवाचक संज्ञा का बोध नहीं देता है।

स्वष्ट तथ्य तो यह है कि पञ्चस्तवी के पद्य एवं पद्यांशों का हवाला भोजराज ने अपने "सरस्वतीकण्ठाभरण" में, आचार्य मम्मट ने "काव्य प्रकाश" में, श्री शिवानन्द ने अपने "मातृकाचक्रविवेकव्याख्या" में, माधवाचार्य ने अपने "सर्वदर्शन-संग्रह" में, श्री अप्पयदीक्षित ने "कुवलयानन्द" में, और विरूपाक्षनाथ ने "विरूपाक्षपंचाशिकाव्याख्या" में दिया है। परं सबों ने

इसके लेखक का कहीं उल्लेख नहीं किया है। परन्तु श्रीविद्यारण्य ने "विद्यार्णव तन्त्र" में और श्री नित्यानन्द ने अपने "श्री सौभाग्य - रत्नाकर में पञ्चस्तवी के पद्यों को उद्धृत करके इसके लेखक का नाम धर्माचार्य प्रस्तुत किया है। श्री नित्यानन्द स्वामी ने लघुस्तव टीका में भी इसके रचनाकार का नाम धर्माचार्य ही लिखा है। श्री पूज्यपाद अमृतवाग्भवाचार्य ने विक्रमाब्द १९९७ में पञ्चस्तवी की मूलमात्र छपाकर इसके लेखक का नाम धर्माचार्य ही लिखा है। श्री डा० शिवनाथ शास्त्री ने भी धर्माचार्य ही इसके रचनाकार अपने पञ्चस्तवी प्रकाशन में स्वीकार किया है। स्वनामधन्य श्री हरभट्ट शास्त्री ने अपने पञ्चस्तवी भाष्य में भी इसके लेखक का नाम धर्माचार्य ही स्वीकार किया है। "सरस्वतीकण्ठाभरण" के रचनाकार भोजराज का समय इस्वी ९९३-९४ का समय ठहरता है। अतः पञ्चस्तवी का समय भोजराज से दो तीन शतक पूर्व ही होना निश्चित ठहरता है। इसके अतिरिक्त पंचस्तवी में दो राजाओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है प्रथम स्तव में "वत्सराज" और द्वितीय स्तव में "उदयन" महाराज। इस्वा की प्रथम शती के संस्कृत — नाटककार महाकवि भास ने भी महाराजा — "वत्सराज और उदयण का उल्लेख क्रमशः यौगंधरायण, स्वप्नवासवत्ता नाटक में दिया है जो अनुमानतः ईस्वापूर्व अवन्ती और मगध के शासक रहे हैं। इस तथ्य के आधार पर पञ्चस्तवी का समय ईस्वा की तीसरी शती के आसपास ठहरता है। इतना तो निश्चित है कि इस ग्रन्थ का आकलन भगवान् महावीर जैन और भगवान बुद्धदेव के उपरान्त ही हुआ है क्योंकि पञ्चस्तवी के रचनाकार ने —

"स्वभावीजैनेन्द्रः सुगतमुनिराकाशमनिलः महावीर जैन और भगवान बुद्ध का उल्लेख "सकलजननीस्तव" के ३३वें श्लोक में किया है।

पञ्चस्तवी रचनाकार ने पांच स्तवों में ग्रन्थ का विभाजन किया है :— (क) लघुस्तव, (ख) चर्चस्तव, (ग) घटस्तव, (घ) अम्बस्तव, (ङ) सकलजननीस्तव, अतः पांच स्तवों में संकलित स्तुति को पञ्चस्तवी नामकरण हुआ है।

(क) लघुस्तव :— लघ का सामान्य अर्थ है—शीघ्र निःसार,

मनोहर और व्याकरण में ह्रस्व अक्षर को लघु कहते हैं। परं पञ्चस्तवी में लघुस्तव प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है अर्थात् मंत्रों के लघु-उपाय के द्वारा सक्रिय होकर क्रिया शक्ति का अनुसरण प्राप्त करना। इस स्तव में २१ श्लोक आते हैं। प्रथम श्लोक से लेकर २०वें श्लोक तक बीजाक्षर (क) सारस्वत, (ख) कामराज, (ग) वाडव आते हैं।

(ख) चर्चस्तवः — चर्च का सामान्य अर्थ है—पढना, कहना, ध्यानस्थ होकर पढना, अनुसरण करना, अन्वेषण करना। यहां चर्च से तात्पर्य है ध्यानस्थ होकर ज्ञान का संचय और संग्रह करना। इस तथ्य को रचनाकार ने विभिन्न कोटियों में प्रस्तुत कराने का सशक्त प्रयत्न किया है रचनाकार ने ज्ञान स्थिति का बोध बिम्बों के माध्यम से उभारने का सशक्त प्रयास किया है और यह विभिन्न बिम्ब निम्नांकित श्लोकों में अधिक व्यापक रूप में मिलते हैं। श्लोक १, २, ६, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २३, २४, २५, २६, २९, ३१। इसके अतिरिक्त कुछ बिम्ब इस कोटि के भी हैं जिन्हें असीम अथवा आधुनिक शैली में ऍबेस्ट्रेक्ट कह सकते हैं। ज्ञान की इन विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से रचनाकार ने शक्ति स्वरूप की व्यापकता एवं समग्रता का बोध प्रस्तुत किया है चर्चस्तव में श्लोक संख्या ३१ है।

(ग) घटस्तवः — घटस्तव का सामान्य अर्थ है—कलश, घडा, किसी के साथ व्यस्त रहना, शरीर आदि। यहां घटस्तव से तात्पर्य है ब्रह्माण्ड रूपी घडे से अव्यक्त इच्छा का उन्मेष होना अथवा उसके प्रवाह शील इच्छा के साथ व्यस्त होना। रचनाकार ने घटस्तव के प्रथम श्लोक में ही भगवती की अपार शक्ति के **संबोधन-बोधक** विशेषणों के माध्यम में समग्र ब्रह्माण्ड की इच्छा शक्ति का प्रवाह अभिव्यक्त किया है। इस स्तव में अनन्त इच्छा मुद्राओं का विवरण विभिन्न बिम्बों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। जब संकोचित जीव अपनी क्षणिक और नश्वर इच्छाओं से विमुक्त होकर अप्रतिहत शक्ति की इच्छा का अनुसरण करता है, उस स्थिति में (श्लोक १८) प्रफुल्लित कमल के समान सुशोभनीय लक्ष्मी भक्त के आगे आगे दौडती है।

इस स्तव में श्लोकों की संख्या २४ है। इसके अतिरिक्त इस स्तव में श्लोक २ एव ५ में असीम इच्छा की उन्मादपूर्ण अवस्था का सशक्त चित्रण किया गया है।

(घ) अम्बस्तव:—अम्ब का सामान्य अर्थ है—जाना, शब्द करना, प्रवाह अथवा प्रवाह शील, दुर्गाभगवती। अम्बति शीघ्रं नक्षत्र स्थानपर्यन्तं गच्छति=जो अगम्य स्थान तक जल्दी जा सकता है, अम्बते स्नेहेनोपगम्यते= स्नेह से जिसके पास जाया जा सके। यहां अम्बस्तव से तात्पर्य है—ब्रह्माण्ड की वह विलासमय सत्ता, जिसके फलस्वरूप समस्त चराचर एक अलौकिक, प्रवाहशील आनन्द में विचरण कर रहा है अथवा महामायाभगवती जिस आनन्द शक्ति के फलस्वरूप—जड-चैतन्य में सत्ताशील बनकर उनके अस्तित्व को स्थापित करती है। ग्रन्थकार ने अवश्य ही शक्ति (एँनर्जी) के बहुस्वरूपी बिम्ब विविध माध्यमों के द्वारा अभिव्यक्त किए हैं।

आधुनिक विज्ञान में अलबर्ट ऐनेंस्टीन के पूर्व वैज्ञानिक जगत में प्रत्येक पदार्थ की एँनर्जी अलग अलग गिनी जाती थी पर ऐनेंस्टीन प्रथम वैज्ञानिक है जिन्होंने शक्ति (एँनर्जी) को मात्र इकाई के रूप में स्वीकार करके वैज्ञानिक जगत में एक नवीन सिद्धान्त स्थापित किया। परं पञ्चस्तवीकार ने इसका चिन्तन ऐनेंस्टीत से १७ सौ वर्ष पूर्व ही किया है—"हे शक्ति स्वरूपा देवी! तुम चन्द्रमा में चान्दनी, सूर्य में प्रकाश और दीप्ति, पुरुष में बुद्धि, वायु में गति, जल में रस-रूप प्रवाह और आग में गर्मी हो, निस्संदेह तुम्हारे बिना इस जगत की सत्ता एकदम निःसार होती। हे देवी! यह जो सौर मण्डल एवं अनन्त नक्षत्र (स्टारस् शून्य ब्रह्माण्ड में विचरन करते हैं, यह वास्तव में आपकी असीम शक्ति का ही गुरुत्वाकर्षण (ग्रेविटेशन) है जिसके फलस्वरूप यह घूमते दिखाई देते हैं (प० ४, श्लो० २०, २१)

इस स्तव में श्लोक संख्या ३२ है। सामान्यतया प्रत्येक श्लोक में व्यक्तरूप से आनन्द-मुद्रा का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त इस स्तव में देवी के प्रति "अम्ब" शब्द का संबोधन आठ बार आया है।

(ङ) सकलजननीस्तव:—सकलजननी का सामान्य अर्थ है चराचर विश्वमाता, समस्त जगत माता अथवा कास्मिक ब्रह्माण्ड को सृजन करने वाली

मां। परं यहां सकलजननीस्तव से तात्पर्य है—स+कल=समस्त कलाओं अर्थात् शक्ति तत्त्व से लेकर पृथ्वी तत्त्व तक समस्त पदार्थ राशि का सृजन करने वाली महामाया भगवती का स्वातंत्र्य-विस्फार। सकलजननी का अन्य एक आशय यह भी है जो भगवती स+कल—अर्थात् अमा-(अमावसी) रूप में पूर्ण अमृत कलश से युक्त है और पूर्णिमा कला में अमृत का आस्वादन करने वाली है। शाक्तमत के अनुसार अमा-कला पंचदशी है और पूर्णिमा-कला के संयोग से शोडषी-कला बनती है। तंत्रों में शोडषी-कला को चित्, संवित् और विश्वजननी नामों से अभिहित किया गया है। इस स्तव में श्लोक संख्य ३८ है इस स्तव में चित्-स्वरूपिणी भगवती को समग्र ब्रह्माण्ड निर्माण करने वाली के रूप में प्रस्तुत किया है :—"कणास्त्वद्दीप्तीनां रविशशिकृशानु-प्रभृतयः परंब्रह्माक्षुद्रं तवनियतमानन्दकणिका" (सूर्य-चन्द्रमा, अग्नि आदि आपके अपार तेज से छूटे हुए कण (पार्टिकलज्) हैं ग्रन्थकार ने जिस ब्रह्माण्ड व्यापी शक्ति का बिम्ब प्रस्तुत किया है निस्संदेह उसकी कल्पना अपार एवं महान उदात्त है।

पञ्चस्तवीकार ने चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियों का प्रवाह (क) क्रिया शक्ति (लघुस्तव) से आरम्भ करके (ख) ज्ञान (चर्चस्तव) (ग) इच्छा, (घटस्तव), (घ) आनन्द (अम्बस्तव) और (ङ) चित् (सकलजननीस्तव) पर विश्राम किया है। यह शाक्तों की अक्षुण्ण परंपरा है। इस प्रकार का क्रम अन्यान्य तन्त्रों में भी उपलब्ध होता है। शाक्त मत के अनुसार चित् शक्ति सर्वसुलभ होने पर भी स्वात्म स्वरूप में गोपित है है पर क्रिया-शक्ति प्रत्यक्ष रूप में सर्वगोचर है।

श्रीराम शैवाश्रम में पञ्चस्तवी एवं समस्त शैव-ग्रन्थों का अध्ययन और अध्यापन महामाहेश्वराचार्य परमगुरु स्वामी श्रीराम के आविर्भाव से लेकर आजतक परंपरा में चला रहा है। परमगुरु स्वामी श्रीराम सशरीरधारी स्वयं शिव के अवतार रूप में, विलुप्त शैव-दर्शन को पुनः उभारने एवं प्रतिष्ठा स्थापित करने के निमित्त ही इस जगत में अवत्तीर्ण हुए थे। उनका दिव्य एव भव्य जीवन स्वयं में इतना उज्ज्वल एवं आकर्षण पूर्ण रहा है कि तत्कालीन अपार जन समूह श्रद्धेय के द्वार पर से हटने का नाम ही नहीं लेते थे। उनकी

वाणी अप्रतिहत थी, उनका चाक्षुष-प्रवाह स्वयं में मूर्च्छता थी और उनका अलौकिक प्रवचन सामूहिक समाधि का अजस्र प्रवाह था जिसमें डूबकर अकृत्रिम "अहं" का वास्तविक बोध सहज रूप में होता था। यद्यपि उनकी छत्र-छाया में बहुत से प्रवीण शिष्यों का निर्माण हुआ पर गुरुदेव स्वामी श्री गोबिन्द कौल ने ही महामाहेश्वराचार्य परमगुरु श्री राम के पथ का अनुसरण करके अपने निर्वाण पर्यन्त शैव-दर्शन के पठन-पाठन का अनुष्ठान पूर्ण किया। गुरुदेव स्वामी गोविन्द कौल के निर्वाण के उपरान्त महात्मा ताराचन्द्र और श्री प्रेमनाथ जी नेहरू ने इस पठन-पाठन का क्रम सुचारु रूप अपने निर्वाण पर्यन्त चलाया और इस समय महात्मा काशीनाथ एवं अन्यान्य शिष्य एवं प्रशिष्य वर्ग श्री राम शैव (त्रिक) आश्रम में शैवदर्शन की शिवध्वनि का अनुगुञ्जार यथाशक्य रूप में देते हैं। आशा है भविष्य में भी नई पीढी के नवयुवक उत्साहित होकर इस अक्षुण्ण संस्कृति की थाती को चिरस्थायी बनाएगें।

इस ग्रन्थ के अनुवाद कार्य में प्रायः प्रातः स्मरणीय गुरुजनों के अनुग्रह का ही संकलन संग्रहीत है और बहुजनहिताय इसे पुनः प्रकाशित कर रहे हैं। हम आशा करते हैं पञ्चस्तवीक़ार श्री धर्माचार्य के शब्दों में—"भक्तिग्रहः किमपि मां मुखरी करोति" संभवतः श्रद्धालु जनता इसी के अनुरूप हमारी इस भेंट को सहर्ष स्वीकार करेंगे।

संपादक मण्डल
श्रीराम शैवाश्रम (फतेहकदल)
गोल गुजराल, जम्मू (भारत)

१६ जून १९९७
३ आषाढ २०५४

महामाहेश्वराचार्य स्वामी श्री राम



यः सर्वात्माखिलजनविभुर्देवदेवोमहेशः
स्वातन्त्र्यस्थो ध्रुवपदगतो निश्चलात्मा वरेण्यः ।
विश्वोत्तीर्णो भवभयहरः स्वेच्छया विश्वपूर्ण-
स्तं श्रीरामं त्रिभुवनगुरुं स्वात्मरूपं नमामि ।।

श्री राम शैवाश्रम, फतेहकदल, श्रीनगर, कश्मीर

स्थापितः -- १८८४ ई०

श्री स्वामी गोबिन्द कौल

अन्तेवासी-गुरुदेव स्वामी श्री राम



लोकवद्व्यवहारेऽपि
त्रिपदाव्यभिचारिणम् ।
वैतक्यांत्मसुसंपन्नं
वन्दे चिद्भैरवं गुरुम् ।।



अथ लघुस्तवः प्रथमः ॥

नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै ॥

लघुस्तवः प्रथमोऽयमारभ्यते ॥

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिमनुष्णगोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः।
एषाऽसौ त्रिपुरा हृदिद्युतिरिवोष्णांशोः सदाहः स्थिता
छिन्द्यान्नः सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी ।१।

पदच्छेदः

ऐंद्रस्य इव शरआसनस्य दधती मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिम् अनुष्णगोः इव शिरसि आतन्वती सर्वतः ।
एषा असौ त्रिपुरा हृदि द्युतिः इव उष्णांशोः सदा अहः (हः) स्थिता
छिन्द्यात् नः सहसा पदैः त्रिभिः अघं ज्योतिः मयीवाक्मयी ॥१॥

ललाटं	—ललाट के	इव	—समान
मध्ये	—मध्य में	प्रभां	—शोभा को
[ऐन्द्रस्य-	—इन्द्र	दधती,	—धारण करती हुई,
शरासनस्य]	—धनुष के	शिरसि	—सिर में (द्वादशान्त में)

अनुष्णगोः —चन्द्रमा के
इव — समान
शौक्लीं —निर्मल (श्वेत)
कांति — दीप्ति को
सर्वतः सब और से [स, रु, अतः]
आतन्वती — विस्तारती हुई,
हृदि — हृदय में
उष्णांशो — (सूर्य की
द्युतिरिव — दीप्ति जैसी
सदा — नित्य
अहःस्थिता — दिन की अवस्था में
(अथवा) — ठहरी हुई
(नित्योदित)
अथवा
हः स्थिता — ह कार में स्थित
एषाऽसौ — यही वह (जो
प्रत्यक्ष है और
जिसका वर्णन
आरम्भ किया
जाता है)

(ज्योतिर्मयी[1] —प्रकाशमयी (तथा)
वाङ्मयी —वाणीमयी (विमर्श
मयी)
त्रिपुरा —त्रिपुरा भगवती*
नः- —हमारे
अघ[2] —पापों को (मलों को)
त्रिभिः- —तीन
पदैः —(स्थानों) पदों से
(१ ललाट २ सिर ३ हृदय
१ ऐं २ क्लीं ३ सौः) से
सहसा —शीघ्र ही † ध्यान
करते ही
छिन्द्यात् —नष्ट करे ।।

जो यह प्रत्यक्ष त्रिपुरा भगवती इन्द्र के धनुष के समान अपनी दीप्ति को ललाट (माथे) में धारण करती है, और सिर में चन्द्रमा जैसी निर्मल दीप्ति को सब ओर से विस्तारती है तथा हृदय में जो प्रतिदिन नित्य सूर्य की दीप्ति जसी शोभित है अर्थात् जिसको रात्रि का कभी भी प्रवेश नहीं है, यही वह त्रिपुरा (जो सब को प्रति समय प्रत्यक्ष स्वानुभव सिद्ध है अथवा जो सबके शरीरों में नित्य इन तीन स्थानों पर तीन प्रकार के स्वरूपों को धारण करती है) हमको शीघ्र, ध्यान करते हुए ही (ऊपर

---

*तीनों में व्यापक १ श्लोक १६ प्रथमस्तव देखिए । † [स, ह, सा बीजाक्षर]

१. अर्थात् प्रकाश विमर्श रूपिणी

२. आणवमल, मायीयमल, कार्ममल
देहाभिमान, भेदप्रथा, पुण्य पाप की वासना ।

कहे हुए तीन स्थानों) पदों से अथवा मन्त्र विधि के अनुसार मन्त्र बीजों से हमारे पापों (अज्ञान रूप मल) को नष्ट करे।

जैसा कि इसी स्तव के १६वें श्लोक में कहा है–कि त्रिपुरा का अर्थ सृष्ठि, स्थिति और संहार करने वाली, रजोगुण सतोगुण और तमोगुण में ठहरे हुए, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम वाले, अकार, उकार और मकार नाम वाले, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत रूप तीन वर्णों को पूर्ण करने वाली त्रिपुरा कहलाती है, अर्थात् सारे त्रिपुटी रुप जगत को विशेष से ललाट, सिर और हृदय में जो बीज अक्षरों (ऐं-क्लीं-सौः) के उच्चारण स्थान है, स्फार देती है।

मंत्रोद्धार विधि पूर्वक :—इस स्तव के २०वें श्लोक में "बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं" में सूचना है कि पहिले श्लोक के तीन पादों में से एक-एक पाद का क्रमशः पहला, दूसरा और तीसरा मन्त्र (पद) अर्थात पहिले पाद में पहला मन्त्र वर्ण, दूसरे में दूसरा और तीसरे में तीसरा मन्त्र वर्ण स्पष्ट है। इस कारण ऐं-क्लीं-सौः एक सपूर्ण मन्त्र बन जाता है। जिसका उच्चारण क्रम से तीन स्थानों पर हो सकता है और "विशेषसहितं" का तात्पर्य यही है। "सर्वतः" अर्थात् "र" को भी बीजाक्षर के साथ मिला कर दूसरा बीज बनता है। जैसे :—क्ल्रीं, इसी प्रकार "सदा हः स्थिता" अर्थात् "ह" भी मंत्रों के साथ मिलाया जाए, जैसेः- "-ह्स्क्लीं-हसौः"। "सहसा पदैस्त्रिभिः" अर्थात् "हस" भी मन्त्रों के साथ मिलावे जैसे :—हसै ह्सक्लीं, ह्सौ, हसै, ह्स्क्लरी। इन तीन बीजों के नाम "सारस्वत" "कामराज" और "वाड़व" बीज है।

शरीर में, सिर और हृदय के मध्य में ललाट है। जिस में सब नाडियां मिल जाती हैं तथा इच्छा, ज्ञान, क्रिया शक्ति के संघट्ट का मध्य ज्ञान शक्ति है, जिसमें इच्छा और क्रिया शक्तियां सब मिल जाती हैं और विश्व रूप को निर्विकल्पभाव से सारे वर्णों (रंगों) से संयुक्त स्थिति रूप में (अवतार) धारण करती है, जैसे इन्द्र धनुष यद्यपि एक ही वस्तु प्रतीत होता है फिर भी सारे वर्ण इस में स्पष्ट है।

ज्ञान शक्ति में एक ऐसा पद है जिस से शिव में भी प्रवेश होता है और भेदमय जगत् में भी क्रिया शक्ति की प्रधानता से प्रवेश होता है । सिर में तो क्रिया शक्ति प्रधान चन्द्रमा की दीप्ति जैसी सब ओर से अपने स्वरूप को सृष्टि स्वरूप में विस्तारती है और हृदय में उष्ण किरणों से भेदमय जगत को जला देती है अर्थात् संहार करती है । जैसा कि तन्त्रालोक के आह्निक ३ श्लोक ६ की टीका में कहा है :-

"।ऊर्ध्वेस्थिता चन्द्रकला च शान्ता
पूर्णामृतानन्दरसेन देवि !"

"अधः संहार कृज्ज्ञेयो महानग्निः कृतान्तकः" ।

इसी प्रकार हृदय अर्थात् इच्छा शक्ति प्रधान अवस्था में सूर्य की दीप्ति के समान अर्थात् संहार कारक नित्य उदय में आए हुए किरणो से स्थित है। इस लिए श्लोक के क्रम पूर्वक तीन शक्तियों ज्ञान क्रिया और इच्छा शक्ति में त्रिपुरा का जो स्वरूप है उसका अभ्यास करना उपदेश दिया है, इस प्रयोजन की दृष्टि से श्लोक में प्रकाशमय और वाणीमय के विशेषणों से स्पष्ट किया है । इसका अर्थ यह है :- इच्छा आदि तीन शक्तियों (त्रिपुरा) का स्वरूप विमर्शमय दिखाया है और मन्त्र रूप बीजाक्षरों के अर्थ में वाणीमय कहा हुआ अर्थात् परारुप हृदय से ही पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी वाणी द्वारा आदिक्षान्त ('अ' से 'क्ष' तक) सब वर्णों को प्रसर करती है जैसा साम्ब पंचाशिका के श्लोक ४ में स्पष्ट है ।।१।। "या सा मित्रावरुणसदनात्" ।

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत्तन्तूत्थिति स्पर्धिनी
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजनन व्यापार बद्धोद्यमा
ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननी गर्भेऽर्भकत्वं नराः ।।२।।

पदच्छेद:

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत् तन्तु उत्थिति स्पर्धिनी
वाक् बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ।
शक्तिः कुण्डलिनी इति विश्वजनन व्यापार बद्ध उद्यमा
ज्ञात्वा इत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननी गर्भे अर्भकत्वं नराः ।।२।।

या	—जो	मन्महे	—विमर्श करते हैं ।
मात्रा[1]	—शक्ति (जीव शक्ति रूप)	कुण्डलिनी	—कुण्डलिनी-
		शक्तिः	—शक्ति (शिवस्व-रूप में लीन)
त्रपुसीलता[2]	—राँगा बेल के		
तनु	—अति सूक्ष्म	विश्वजनन-	—जगतों के उत्पन्न करने के
लसत	—चमकती हुई		
तंतु	—तार के	व्यापार-	—काम में
उन्थिति	—उदय के साथ	बद्धोद्यमा इति	—निरन्तर उद्योग शील है
स्पर्धिनी	—समानता रखती हुई (अति सूक्ष्म और चमकीली)	इत्थं	—इस प्रकार के स्वरूप को
तव	—तुम्हारे		
प्रथमे	—पहिले	ज्ञात्वा	—जानकर
बाग्बीजे	—वाणी के बीज में (पश्यन्ती) एँ बीज में)	नराः	—मनुष्य
		जननी	—माता के
सदा	—निरन्तर	गर्भे	—गर्भ में
स्थिता	—स्थित है	पुनः	—फिर से
तां	—उसी वाणी का	अर्भकत्वं	—बालक भाव को
ते वयम्	—वही हम उत्कृष्ट भक्त	न स्पृशन्ति	—नहीं छूते हैं (अर्थात् मुक्त होते हैं)
(सदा)	—नित्य		

---

१. ऐं यही मात्रा, बाहर निकलने को तैयार, सृष्टि रूप ।

२. कश्मीरी ग्यवथीर को हिन्दी में राँगा बेल कहते हैं ।

जो मात्रा, अर्थात् ज्ञान द्वारा संसार भय से बचाने वाली तुम्हारे प्रथम वाग्बीज [ऐं] में ठहरी हुई—त्रपुसीलता [ग्यवथीर] की सूक्ष्मता से निकली हुई आरम्भ तार के समान है अर्थात् अतिसूक्ष्म प्रसर स्वरूप को धारण करती है। हम उस तुम्हारी मात्रा का निरन्तर विमर्श करते हैं, वही यह कुण्डलिनी शक्ति सदाशिव से पृथ्वी तक जगत् की उत्पत्ति करने की क्रिया के लिए बान्धे हुए उद्योग वाली है। इस प्रकार इसका ज्ञान पाकर मनुष्य दुबारा मां के गर्भ में बालक भाव का स्पर्श नहीं करते हैं। अर्थात् इसी जन्म में मुक्त होते हैं।

रहस्य अर्थ में परा भगवती का प्रथम वाग्बीज पश्यन्ती वाक् है, जो ज्ञानशक्ति रूप अपने स्वरूप सदाशिव तत्त्व में स्थित रह कर ही जगत् को अंकुरायमान अवस्था में प्रकाशित करती है।

सवित् अर्थ में, कुण्डलिनी शक्ति अर्थात् 'कुण्ड' शिव स्वरूप में जो लीन शक्ति है, वही मात्रा स्वरूप के ज्ञान से [सारे जगत को रक्षा करने वाली] एक प्रकार की लता अथवा राँगाबेल की तरह निकली हुई तार के आरम्भ के साथ समानता रखती है, [यह ग्यवथीर की उपमा क्यों ?] [यह लता चमकीली और इसका फूटता हुआ सिरा बहुत सूक्ष्म होता है] वह आपके वाग्बीज अर्थात् 'परा' में ठहरती है। [क्योंकि पश्यन्तीं, मध्यमा, वैखरी रूप से वही सूक्ष्म तार का रूप धारण करके निकलती है। हम उसी तुम्हारे वाग्बीज का विमर्शन करते हैं।

कुण्डलिनी शक्ति जगत् की उत्पति की क्रिया में बांधे हुए उद्योग वाली है, ऐसे ज्ञान की प्राप्ति पर पशु प्रमाता फिर मां के गर्भ में जन्म नहीं लेते हैं अर्थात् मुक्त होते हैं ॥२॥

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तुसहसा ऐऐ इति व्याहृतम्
येनाऽकूतवशादऽपीह वरदे ! बिन्दुं विनाप्यक्षरम् ।

तस्यापि ध्रुवमेव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे
वाचःसूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात् ॥३॥

पदच्छेदः

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तु सहसा ऐऐ इति व्याहृतम्
येन काकूतवशात् अपि इह वरदे ! बिन्दुं विना अपि अक्षरम् ।
तस्य अपि ध्रुवम् एव देवि ! तरसा जाते तव अनुग्रहे
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचः निर्यान्ति वक्त्रअम्बुजात् ॥३॥

वरदे !	—हे (भोग तथा मोक्ष का) वर देने वाली	अपि	—भी
		अक्षरम्	—अक्षर का
देवि !	—हे क्रीडन शीले !	व्याहृतं	—उच्चारण किया हो
येन	—जिस पुरुष ने	तस्य अपि	—उस पुरुष के भी
इह	—इस संसार में	वक्त्र	—मुख
संभ्रमकारि	—कोई आश्चर्य जनक या भयदायक	अम्बुजात्	—कमल से
		तव	—तुम्हारा
वस्तु	—पदार्थ	अनुग्रहे	—अनुग्रह
दृष्ट्वा	—देखकर	जाते	—उत्पन्न होकर
आकूत-	—भय या हर्ष के	तरसा	—बिना यत्न के
वशात्	—अभिप्राय से	सूक्ति	—उत्तम वाणी रूपी
अपि	—भी	सुधारस	—अमृत रस की
सहसा	—शीघ्रता से	द्रवमुचो	—प्रवाह शील
ऐ ऐ इति	—ऐ ऐ इस प्रकार*	वाचः	—वाणियां
बिन्दुं विना	—बिन्दु के विना	ध्रुवं एव	—निश्चय ही
		निर्यान्ति	—निकलती है ।

---

*जब कोई मनुष्य किसी आश्चर्य जनक या भयदायक वस्तु को देखता है तो उसके मुख से अकस्मात् ही ऐ ऐ पद निकलते हैं यही बिन्दु के बिना ऐं बीजाक्षर है । (टिपनी पृष्ट ८ पर देखिए)

हे वरदे ! किसी आश्चर्यजनक वस्तु को देखकर शीघ्र ही "ऐं" के स्थान पर जिसने बिना बिन्दु के ही "ऐ ऐ" किसी हर्ष या भय के अभिप्राय से भी अज्ञान में भी उच्चार किया हो अथवा ज्ञान की उत्पत्ति के बिना ही 'ऐ ऐ' का विमर्श किया हो उसको भी हे देवी ! अवश्य ही तुम्हारा अनुग्रह उदय में आता है और उसके मुखकमल से पश्यन्ती आदि वाणियां ज्ञानमय अमृतरस [चित्रस[से भरी प्रसर करती है ।।३।।

यन्नित्ये ! तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलम्
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिदबुधश्चेभ्दुवि ।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसो यत्कीर्त्यन्तो द्विजाः
प्रारम्भे प्रणवास्पदप्रणयितां नीत्वोच्चरन्तिस्फुटम् ।।४।।

पदच्छेदः

यत् नित्ये ! तव कात्रराजम् अपरं मन्त्र अक्षरं निस्कलम्
तत् सारस्वतम् इति अवैति विरलः कश्चिद् बुधः चेत् भुवि ।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्य तपसः यत् कीर्तयन्तः द्विजाः
प्रारम्भे प्रणव आस्पद प्रणयितां नीत्वा उच्चरन्ति स्फुटम् ।।४।।

(हे) नित्ये	—हे शंकर की अविनाशिनी विच्छक्ति	निष्कलं	—कलना रहिव या (क् ल् रहित अर्थात ई)
यत् तव	—जो तुम्हारा		
अपरं	—दूसरा (क्लीं) (लक्ष्मी बीज)	कामराज	—अभिलाषाओं को पूरण करने वाला (कामराज नामक)

इस श्लोक में पहले श्लोक के पहले बाद के पहले वर्ण अर्थात् ऐं बीजाक्षर की महिमा बताई गई है। अज्ञान से भी ऐं की जगह ऐ का उच्चार करने से उस पुरुष पर अनुग्रह हो जाता है ।

मंत्राक्षरम्	— मंत्र अक्षर		का
(अस्ति)	(ई) है	द्विजाः	— ब्राह्मण
तत्	— वह	प्रतिपर्व	— हर एक पर्व पर
सारस्वतम्	— सरस्वती का (मंत्र अक्षर है)	सत्यतपसो	— सत्यतपस नामी ऋषि का
इति	— इस प्रकार	आख्यानं	— नाम
चेत्	— अगर	कीर्तयन्तः	— बताकर
कश्चित	— कोई	प्रारम्भे	— हर काम के आरम्भ में
भुवि	— संसार में	प्रणवास्पद	— प्रणव (ओं) के समान
अवैति	— जाने,		
विरलः(सः)	— (वह) विरला ही[1]	प्रणयितां	— सस्नेह मानकर
बुधः	— कोई ज्ञानवान होता है	नीत्वा	(इस बीज अक्षर का)
		स्फुटम्	— स्फुट प्रकार से
यत्	— जिस (बीज अक्षर)	उच्चरन्ति	— उच्चारण करते हैं।

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधैः
तार्तीयीकमहं नमामि मनसा त्वद्बीजमिन्दु प्रभम्।
अस्त्वौर्वोऽपि सरस्वतीमनुगतो जाड्याम्बुविच्छित्तये
गौ शब्दो गिरि वर्तते सनियतं योगं विना सिद्धिदः ॥५॥

पदच्छेदः

यत् सद्यः वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधैः
तार्तीयीकम् अहं नमामि मनसा त्वत् बीजम् इन्दु प्रभम्।
अस्तु और्वः अपि सरस्वतीम् अनुगतः जाड्यअम्बु विच्छित्तये
गो शब्दः गिरि वर्तते स नियतं योगं विना सिद्धिदः ॥५॥

---

१. मूर्ख अथवा बालक भी

इस श्लोक में पहले श्लोक के दूसरे पाद के दूसरे अक्षर अर्थात् क्लीं बीजाक्षर का गुण गान हैं।

यत्	— जो (सौः बीज अक्षर)
सद्यः	— तत्क्षणात्
वचसान्	— वाणियों को
प्रवृत्तिकरणे	— प्रवृत्त करने में
बुधैः	— बुद्धिमानों से
दृष्टप्रभावम्	— देखे हुये प्रभाव वाला
(अस्ति)	है
अहं	— मैं
इन्दुप्रभम्	— चन्द्रमा की दीप्ति वाले (शीतल तथा आनन्ददायक)
तार्तीयीकम्	— तीसरे (अर्थात सौः)
त्वत् बीजम्	— तुम्हारे बीज अक्षर को
मनसा	— मन से
नमामि	— नमस्कार करता हूं
सरस्वती	— सरस्वती के
अनुगतो	— पीछे गया हुआ[1]

और्वोऽपि[2]	— [क] वाडव अग्नि भी [ख] औ बीज तुम्हें भी
जाड्याम्बु	— अज्ञानरूपी जलों को
विच्छित्तये	— सुखाने के लिये
अस्तु	— [समर्थ] हो। अर्थात् (अज्ञान का नाश करे)
स गौ शब्दो	— स गौ शब्द
गिरि	— वाणी के अर्थ में
वर्तते	— प्रयुक्त होता है
नियतं	— [और[अवश्य ही
[क] योगं विना	योग के विना
[ख] यो गं विना	जो [बीज अक्षर] गकार के बिना [अर्थात् औ बीज अक्षर]
सिद्धिदः	— सिद्धि (लौकिक तथा पारमार्थिक) को देने
(अस्ति)	वाला है।

१. ज्ञानरूपी अग्नि जो सभी भेद रूपी अज्ञान को नाश करता है।

२. प्रथम अर्थ :- वाडवानल (ज्ञान रूपी अग्नि जो सभी भेद रूपी अज्ञान को नाश करता है।)

द्वितीय अर्थ :- (औः वः अपि) औः बीज (तुम्हारे भी)

[क] योग आदि उपायों के विना ही सिद्धि देता है।

[ख] गकार के विना ही उच्चारण किया हुआ गौः शब्द अर्थात् औः सिद्धि देता है।

इस श्लोक में पहले श्लोक के तीसरे पाद के तीसरे अक्षर अर्थात् सौ बीजाक्षर का वर्णन है।

एकैकं तवदेवि ! बीजमनघं सव्यञ्जनाऽव्यञ्जनं,
कूटस्थं यदि वा पृथक् क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात् ।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं,
जप्तं वा सफली करोति सहसा तं तं समस्तं नृणाम् ।।६।।

पदच्छेदः

एक एकं तव देवि ! बीजम् अनघं सव्यञ्जन अव्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक् क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात् ।
यं यं कामम् अपेक्ष्य येन विधिना केन अपि वा चिन्तित
जप्तं वा सफली करोति सहसा तं तं समस्त नृणाम् ।।६।।

देवि !	— हे देवि !	कामं	— अभिलाषा की
तव	— तुम्हारा	अपेक्ष्यं	— अपेक्षा करके
एकैकं	— प्रत्येक	येन केनापि	— जिस किसी भी
अनघं	— दोषरहित	विधिना	— विधि से
बीजं	— बीज अक्षर	चिन्तितं वा	— चिन्तन
सव्यंजन	— व्यंजन सहित	जप्तं	— या जप किया हुआ हो वह विमर्श किया हुआ बीजाक्षर जप करने वाला
अव्यंजन	— [या] व्यंजन रहित,		
कूटस्थं[1]	— [या] कूटस्थ बीज में ठहरा हुआ		
यदि वा	— या	नृणाम्	— मनुष्यों की
पृथक्[2]	— भिन्न क्रम में	तं तं	— उन
क्रमगत	— गया हुआ,	समस्तं	— सभी [अभिलाषाओं को]
यद्वा	— या		
व्युत्क्रमात्[3]	— अक्रम भाव में	सहसा	— तत्क्षणात
स्थित	— ठहरा हुआ	सफली	— सफल
यं यं	— जिस जिस	करोति	— करता है ।

१. क्लीं २. क् ल् ई ३. ल् क् ई

वामे पुस्तक धारिणीमभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूर कुन्दो ज्ज्वलाम् ।
उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयन स्निग्ध प्रभा लोकिनीं
ये त्वामऽम्ब न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः॥७॥

पदच्छेदः

वामे पुस्तक धारिणीम् अभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्द उज्ज्वलाम्
उज्जृम्भ अम्बुजपत्र कान्तनयन स्निग्धप्रभा लोकिनीम्
ये त्वाम् अम्ब ! न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ॥७॥

अम्ब ! — मां, विश्व को उत्पन्न करने वाली,
ये — जो मनुष्य
वामे(करद्वये)—बायें दो हाथों में से [एक में]
पुस्तक — पुस्तक
धारिणीम् — धारण करने वाली
[च] — [और]
अभयदा* — [दूसरे से] अभय देने वाली
दक्षिणे[करद्वये]-दायें [दो हाथों में से] [एक में]
साक्षस्रजं — जप माला [धारण करने वाली और दूसरे में)
भक्तेभ्यो — भक्तों को
वरदान — वरदान देने के लिए
पेशलकरां — कोमल हाथ वाली
कर्पूर — कर्पूर पुष्प [एवं]
कुन्द [इव] — कुन्द पुष्प [जैसी]
उज्ज्वलां — प्रभा पूर्ण
उज्जम्भ — विकसित
अम्बुजपत्र — कमल पत्र के समान
कान्त —- सुन्दर
नयन — नेत्रों की
स्निग्ध प्रभा- स्नेह पूर्ण दीप्ति से
आलोकिनीं —- देखने वाली का
त्वां — तुम्हारे [सक्त इस

---

*इस ध्यान में देवी का चतुर्भुज ध्यान है, और उसके हाथों में पुस्तक, अक्षमाला, वर और अभय दिखाये गये हैं ।

	स्वरूप का)	तेषां	— उन्हें
मनसा	— मन से	कुतः	— कैसे
(न	—	कवित्वं ?	— सर्वज्ञता (प्राप्त हो
शीलयन्ति	— अभ्यास (मनन)		सकती है ? अर्थात्
	नहीं करते हैं		नहीं हो सकती ।

ये त्वां पाण्डुर पुण्डरीक पटलस्पष्टाभिरामप्रभां
सिञ्चन्तीममृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम् ।
अश्रान्तं विकटस्फुटाक्षर पदा निर्याति वक्त्राम्बुजात्
तेषां भारति ! भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत्॥८॥

पदच्छेदः

ये त्वां पाण्डुर पुण्डरीक पटल स्पष्ट अभिराम प्रभां
सिञ्चन्तीम् अमृतद्रवैः इव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम् ।
अश्रातं विकट स्फुट अक्षर पदा निर्याति वक्त्र अम्बुजात्
तेषां भारति ! भारती सुरसरित् कल्लोल लोल उर्मिवत् ॥८॥

भारति !	— परारूपिणी - हे		प्रवाहों से
	सरस्वती !	शिरः	— सिर को अर्थात्
ये	— जो भक्त		द्वादशान्त को
त्वाम्	— तुम्हारा	सिञ्चन्तीम्	— सींचती हुई
पाण्डुर	— सफ़ेद	मूर्ध्नि	— ललाट में
पुण्डरीक	— कमल के	स्थिताम्	— ठहरी हुई [का]
पटल	— समूह जैसे	ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं
स्पष्ट	— निर्मल [तथा]	तेषां	— उनके
अभिराम	— सुन्दर	वक्त्र	— मुख
प्रभां	— दीप्तिवाली	अम्बुजात्	— कमल से
अमृतद्रवैः इव	— मानो चित अमृत के	विकट	— बडे [गम्भीर]

स्फुट	— स्पष्ट	कल्लोललोल	— चञ्चल
अक्षरपदा	— अक्षर और पदों वाली [परमार्थ पूर्ण]	ऊर्मिवत्	— तरंगो की जैसी
		अश्रान्तं	— निरन्तर
भारती	— बाणी	निर्याति	— निकलती है ।
सुरसरित्	— आकाश गंगा की		

ये सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितां त्वत्तेजसा द्यामिमाम्
उर्वी चापि विलीन यावकरस प्रस्तार मग्नामिव ।
पश्यन्ति क्षणमऽप्यऽनन्य मनस स्तेषामऽनङ्गज्वर-
क्लन्तास्त्रस्तकुरङ्ग शावक दृशो वश्या भवन्ति स्फुटम्।६।

पदच्छेद:

ये सिन्दूर पराग पुञ्जपिहितां त्वत् तेजसा द्याम् इमाम्
उर्वी च अपि विलीन यावकरस प्रस्तार मग्नाम् इव ।
पश्यन्ति क्षणम् अपि अनन्यमनसः तेषाम् अनङ्ग ज्वर-
क्लान्ताः त्रस्तकुरङ्ग शावकदृशः वश्याः भवन्ति स्फ़ुटम् ।।६।।

ये	— जो [भक्त]	पिहितां	— छिपा हुआ
अनन्य मनसः	— एकाग्र मन वाले [भक्त]	उर्वीचापि	इमां और इस पृथ्वी को भी
त्वत्	— तुम्हारे	विलीन	— पिघले हुए
तेजसा	— तेज से	यावकरस	— लाक्षारस के[1]
इमां द्यां	— इस आकाश को	प्रसतार	— विस्तार में
सिन्दूर	— सिन्दूर की	मग्नां इव	— डूबी हुई जैसी
पराग	— धूलि के	क्षणम् अपि	— एक क्षण भी
पुञ्ज	— समूह से	पश्यन्ति	— देखते हैं

१. कश्मीरी में ओलुत ।

अनङ्ग	— काम देव के		[सुन्दर शक्तियां
ज्वर	— सन्ताप से		सर्वज्ञता आदि]
क्लान्ताः	— पीडित	स्फुटं	— प्रत्यक्ष रूप में
त्रस्त	— डरे हुए	तेषां	— उन भक्तों के
कुरंग	— हिरण के	वश्या	— वश
शावक	— बच्चों [की जैसी]	भवन्ति	— हो जाती हैं।
दृशः	— आंखों वाली		

चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधरामाऽऽबद्धकाञ्चीस्रजं
ये त्वां चेतसि तद्गतेक्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थितिम्।
तेषां वेश्मसु विभ्रमादहरहः स्फारी भवन्त्यश्चिरं
माद्यत्कुञ्जरकर्णतालतरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः॥१०॥

पदच्छेदः

चञ्चत् काञ्चन कुण्डल अङ्गद धराम् आबद्धकाञ्चनस्रजं
ये त्वां चेतसि तद्गते क्षणम् अपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थितिम् ।
तेषां वेश्मसु विभ्रमाद् अहः अहः स्फारी भवन्त्यः चिरम्
माद्यत् कुञ्जर कर्णताल तरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः ॥१०॥

ये	— जो (भक्त)	त्वां	— तुम्हारे (स्वरूप का)
चंचत्	— चमकते हुए	तद्गते	— उसी (तुम्हारे स्व-
कांचन	— सोने की		रूप में) एकाग्र
कुंडल	— बालियों (और)	चेतसि	— मन में
अंगद	— बाजूबन्दों को	क्षणमपि	— एक क्षण भी
धराम्	— धारण करने वाले	स्थिति कृत्वा	— एकाग्रता पूर्वक
आबद्ध	— तथा बांधी हुई	ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं
काञ्ची	— सोने की	तेषां	— उन (भक्तों) के
स्रजं	— तागडी वाले	वेश्मसु	— घरों में

अहरहः	— सदा	तरलाः	— चंचल
स्फारी	— विकसित	श्रियः	— शक्तियां
भवन्त्यः	— होती हुई	विभ्रमात्	— विवश होकर
माद्यत्	— मस्त	चिरं	— चिर काल तक
कुंजर	— हाथी के	स्थैर्यं	— स्थिरता को
कर्णताल	— कनपुटी जैसी	भजन्ते	— सेवन करती है ।

आर्भट्या शशिखण्डमण्डितजटाजूटांनृमुण्डस्रजं
बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम् ।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामाऽऽपीनतुङ्गस्तनीं
मध्ये निम्नवलित्रयाङ्किततनुं त्वद्रूपसंवित्तये ॥११॥

पदच्छेदः

आर्भट्या शशिखण्डमण्डित जटाजूटां नृमुण्डस्रजं
बन्धूक प्रसवअरुणअम्बरधरां प्रेत आसन अध्यासिनीम् ।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनाम् आपीन तुङ्गस्तनीम्
मध्ये निम्न वलि त्रय अङ्किततनुं त्वत्रूप संवित्तये ॥११॥

आर्भट्या	— वीरवृत्ति पूर्ण	अम्बरधरां	— वस्त्र धारण किये हुए,
शशिखण्ड	— चन्द्रकला से		
मंडित	— सुशोभित,	प्रेतासन	— प्रेतरूप आसन पर
जटाजूटां	— जटाजूट वाली	अध्यासिनी	— बैठी हुई
नृमुण्ड	— मनुष्य की खोपड़ी की	चतुर्भुजां	— चार भुजाओं वाली,
		त्रिनयनां	— तीन नेत्रों वाली[1]
स्रजं	— मालाधारी,	आपीन	— बडे
बन्धूकप्रसव	— बन्धूक पुष्प जैसे	तुङ्ग	— मोटे
अरुण	— लाल	स्तनीं	— स्तनों वाली[2]

१. तीन नेत्र–सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि । २. माता की भांति जगत् को आप्यायन और आप्लावन देने वाली ।

मध्ये	— मध्य भाग में	रूप	— स्वरूप के
निम्न	— सूक्ष्म (गहरे)	संवित्तये	— जानने के लिये
वलित्रय	— तीन रेखाओं[1] के		(भक्तजन)
अंकित	— चिह्न वाले (ऐसे),	त्वां	— तुम्हें
तनु	— स्वरूप का	ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं ।
त्वत्	— तुम्हारे		

जातोऽप्यऽल्प परिच्छदे क्षितिभुजां सामान्य मात्रे कुले
निःशेषावनिचक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः ।
यद्विद्याधरवृन्दवन्दित पदः श्रीवत्सराजोऽभवत्
देवी ! त्वच्चरणाम्बुज प्रणतिजः सोऽयंप्रसादोदयः।।१२।।

पदच्छेदः

जातः अपि अल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले
निःशेषअवनि चक्रवर्ति पदवीं लब्ध्वा प्रताप उन्नतः ।
यत् विद्याधर वृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजः अभवत्
देवि ! त्वत् चरण अम्बुज प्रणतिजः स अयं प्रसाद उदयः ।।१२।।

देवि !	— हे देवि !	श्रीवत्सराजः	— कौशाम्बी नगरी का राजा
क्षितिभुजां	— क्षत्रियों के		
सामान्यमात्रे	— अति साधारण	यत्	— जो
कुले	— कुल (और)	निःशेष	— सारी
अल्प	— छोटे	अवनि	— पृथ्वी के
परिच्छदे	— वंश में	चक्रवर्ति	— चक्रवर्ती सम्राट की
जातः	— उत्पन्न हुआ	पदवीं	— पदवी को
अपिः	— भी	लब्ध्वा	— पाकर

१. तीनवलि—इच्छा, ज्ञान, तथा क्रिया ।

प्रताप	— ऊँचे प्रताप वाला	सोऽयं[1]	— वह यही
उन्नतः	— (अति प्रतापी)	प्रसाद	— अनुग्रह का
(च)	— (और)	उदयः	— उदय था
विद्याधर	— विद्याधरों के	त्वत्	— (जो) तुम्हारे
वृन्द	— समूह से	चरण	— चरण
वन्दित	— पूजे हुए	अम्बुज	— कमलों के
पदः	— चरणों वाला	प्रणितजः	— प्रणाम से उत्पन्न
अभवत्	— बना		हुआ था ।

चण्डि ! त्वच्चरणाम्बुजार्चनविधौ बिल्वीदलोल्लुण्ठन-
त्रुटचत्कण्टककोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।
ते दण्डाङ्कुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्समत्स्याङ्कितैः
जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोजप्रभैः पाणिभिः।१३।

पदच्छेदः

चण्डि ! त्वत् चरण अम्बुज अर्चन विधौ बिल्वीदल उल्लुण्ठन-
त्रुत्रचत् कण्टक कोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।
ते दण्ड अङ्कुश चक्र चाप कुलिश श्रीवत्स मत्स्य अङ्कितैः
जायन्ते पृथिवीभुजः कथम् इव अम्भोज प्रभैः पाणिभिः ।।१३।।

चण्डि !	— हे तेजस्विनी !	विधौ	— विधि में
त्वत्	— तुम्हारे	येषां	— जिन (अभक्तों के)
चरण	— चरण (ज्ञान, क्रिया रूप चरण)	करा,	— हाथों से
		बिल्वीदल	— बिल्वपत्र के
अम्बुज	— कमलों की	उल्लुण्ठन	— तोड़ने से
अर्चन	— पूजा की	त्रुटचत्	— चुभते हुए

१. वह ऐसे (ऊपर बताए गए)

कंटक	— कांटों के कष्ट को नहीं सहा[1]	चाप	— धनुष
		कुलिश	— कुल्हाडी
कोटिभिः	— करोडों	श्रीवत्स	— श्रीवत्स रत्न
परिचयं न जग्मुः	— (कांटों की नोकों से जानकारी नहीं की)	मत्स्य अंकितैः	— [और] मछली के चिह्नों वाले[3]
		अम्भोजप्रभैः	— कमल जैसे
ते	— वह (अभक्त)	पाणिभिः	— हाथों से युक्त
दंड	— डंडा	पृथिवीभुजः	— चक्रवर्ती राजा
अंकुश	— आंकस[2]	कथं इव	— किस प्रकार,
चक्र	— चक्र	जायन्ते	— बन सकते हैं ?

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवैः
त्वां देवि ! त्रिपुरे ! पराऽपरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ ।
यां यां प्रार्थयते मनःस्थिरधियां तेषां त एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नी कृताः।१४।

पदच्छेदः

विप्राः क्षोणिभुजः विशः तत् इतरे क्षीर आज्य मधु आसवैः
त्वां देवि ! त्रिपुरे ! पर अपरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां तेषां ते एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिम् अवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैः अविघ्नी कृताः ।।१४।।

---

१. जिन्होंने देवी की पूजा के लिए कष्ट सहे उनको ही चक्रवर्ती राजा बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । अभक्त ऐसा फल प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।

२. कश्मीरी में टोंग ।

३. सामुद्रिक शास्त्रों की दृष्टि से दण्ड, अंकुश आदि के आकार हाथ पर होने चक्रवर्ती राजा बनने के लक्षण हैं ।

देवि ! त्रिपुरे !	—हे क्रीडनशील त्रिपुरा देवी !		करते हैं
विप्राः	— ब्राह्मण	तेषां	— उन
क्षोणिभुजो	— क्षत्रिय	स्थिरधियां	— अटल बुद्धि वालों का
विशः	— वैश्य (और)	मनः	— मन
तत् इतरे	— इनके अतिरिक्त [जीवन मुक्त]	यां यां	— जिस जिस
		सिद्धिं	— सिद्धि को
क्षीर	— दूध	प्रार्थयते	— चाहता है
आज्य	— घी	तां तां	— उस २ [सिद्धि को]
मधु	— शहद [और]	ते	— वे [भक्त]
आसवैः	— चित् रस से	ध्रुवं एव	— निश्चय ही
त्वां	— तुझ	विघ्नैः	— सब विघ्नों से
परापरमयीं	— स्थूल और सूक्ष्म रूप देवी को	अविघ्नी	— निर्विघ्न
		कृताः	— होकर
पूजाविधौ	— पूजा की विधि में	तरसा	— उसी क्षण
संतर्प्य	— [तुझ को] तृप्त	अवाप्नुवन्ति	— प्राप्त करते हैं ।

शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे
त्वत्तः केशववासवप्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति स्फुटम् ।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी
सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे ।१५।

पदच्छेदः

शब्दानां जननी त्वम् अत्र भुवने वाक् वादिनी इति उच्यसे
त्वत्तः केशववासव प्रभृतयः अपि आविर्भवन्ति स्फुटम् ।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मा आदयः ते अपि अमी
सा त्वं काचित् अचिन्त्यरूप महिमा शक्तिः परा गीयसे ।।१५।।

त्वं	— तुम
अत्र	— इस
भुवने	— जगत् में
शब्दानां	— सभी शब्दों की
जननी	— उत्पन्न करने वाली
वाग्वादिनी	— वाणियों की[1] उच्चारण करने वाली
इति	— इस नाम से
उच्यसे	— कहलाती हो ।
केशव	— विष्णु
वासव	— इन्द्र
प्रभृतयः	— इत्यादि
अपि	— भी
त्वत्तः	— तुम से ही
स्फुटं	— प्रत्यक्ष रूप से
आवि-	— प्रकट
र्भवन्ति	— होंते हैं ।

ते अमी	— वही यह
ब्राह्मादयः	— ब्रह्मा [विष्णु] इत्यादि[2]
अपि	— भी
कल्प	— कल्प के
विरमे	— अंत में
यत्र	— जिस [तुम्हारे स्वरूप] में
खलु	— निश्चय करके
लीयन्ते	— लय हो जाते हैं
सा त्वम्	— वही तुम
काचित्	— कोई [अलौकिक]
अचिन्त्य	— चिन्तन से अतीत
रूप	— रूप [और]
महिमा[3]	— महिमा वाली
परा शक्तिः	— परा [उत्कृष्ट] शक्ति
गीयसे	— गाई जाती हो ।

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-
स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः ।

---

१. चार प्रकार की वाणियां परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी है । यह सब परा शक्ति का ही प्रसर है और इसी से सारी सूक्ष्म, स्थूल, सृष्टि की उत्पत्ति है ।

२. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र जो सृष्टि, स्थिति और संहार के अधिकारी हैं शक्ति से ही निकलते हैं और उसी में लय हो जाते हैं ।

३. अर्थात् जिसका रूप और महिमा कहा नहीं जा सकता है ।

यत्किञ्चज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ॥१६॥

पदच्छेदः

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वराः
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करम् अथो त्रिब्रह्म वर्णाः त्रयः।
यत् किंचित् जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्ग आत्मकम्
तत् सर्वं त्रिपुरा इति नाम भगवती ! अन्वेति ते तत्त्वतः ॥१६॥

भगवति !	— हे ऐश्वर्य शालिनी भगवती !
देवानां त्रितयं	— तीन देवता (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र)
हुतभुजां त्रयी	— तीन अग्नियां (गार्हस्थ, हवन, श्मशान
शक्ति त्रयं	— तीन शक्तियां (इच्छा, ज्ञान, क्रिया)
त्रिस्वराः	— तीन स्वर (अ,इ,उ) [उदात्त, अनुदात्त, स्वरित]
त्रैलोक्यं	— तीन लोक [भूः, भुवः, स्वः]
त्रिपदी	— तीन पद [गायत्री, जालंधर, कामरूप]
त्रिपुष्करम्	— तीन जल [नाभि, हृदय, ललाट]
अथो	— और
त्रिब्रह्म	— तीन ब्रह्म [नर, शक्ति, शिव] [इडा, पिंगला, सुषुम्ना]
त्रयः वर्णाः	— तीन वर्ण [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य]
जगति	— जगत में
यत्	— जो
किंचित्	— कोई भी
त्रिवर्गात्मकं	— तीन वर्गों के रूप
वस्तु	— पदार्थ
त्रिधा	— तीन प्रकार से
नियमितं	— नियम में बांधा गया है
तत्सर्वं	— वह सब ही
तत्त्वतः	— वास्तवता से
ते	— तुम्हारे
त्रिपुरा	— त्रिपुरा
इति	— ऐसे
नाम	— नाम का
अन्वेति	— अनुसरण करते हैं।

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमङ्करीमध्वनि
क्रव्यादद्विपसर्पभाजि शवरीं कान्तारदुर्गे गिरौ ।
भूतप्रेतपिशाचजम्बुकभये स्मृत्वा महाभैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे ॥१७॥

पदच्छेद:

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमङ्करीम् अध्वनि
क्रव्याद द्विपसर्पभाजिशवरीं कान्तार दुर्गे गिरौ ।
भूत प्रेत पिशाचजम्बुकभये स्मृत्वा महाभैरवीम्
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदः तारां च तोयप्लवे ॥१७॥

राजकुले	— राजकुले में	जम्बुक	— गीदड इत्यादि पशुओं के
लक्ष्मीं	— लक्ष्मी का,		
रणभुवि	— युद्ध क्षेत्र में	भये	— भय में,
जयां	— जया रूप का,	महाभैरवीं	— महा भैरवी रूप का,
क्रव्याद-	— शेर	व्यामोहे	— बडे मोह में
द्विप-	— हाथी	त्रिपुरां	— त्रिपुरा रूप का,
सर्प भाजि	— सांपों आदि से भरे	तोय	— जल के
अध्वनि	— मार्ग में,	प्लवे	— बाढ में
क्षेमंकरीम्	— क्षेमंकरी [कल्याण कारिणी] का,	तारां	— [तुम्हारे] तारारूप पार कराने वाली का
कांतार	— कठिन (और)	स्मृत्वा	— स्मरण करके (भक्तजन)
दुर्गे	— दुर्गम		
गिरौ	— पहाड पर	विपदः	— आपदाओं को
शवरीं	— शिकारिन रूप का,	तरन्ति	— पार करते हैं ।
भूत प्रेत	— भूत प्रेत		[अर्थात् आपदाओं से छुटकारा पाते हैं]
पिशाच	— पिशाच और		

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥१८॥

पदच्छेद:

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाक्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा पर अपर मयी माता कुमारी इति असि ॥१८॥

माया	— स्वातंत्र्य शक्ति	शिवा	— कल्याण रूपिणी
कुंडलिनी	— मूलाधार शक्ति	(शाम्भवी-	— शंभु की अभिन्न
क्रिया	— क्रिया शक्ति	शक्ति	— शक्ति
मधुमती	— आनन्द शक्ति	शंकर-	— शंकर की
काली	— सृष्टि, स्थिति, संहार शक्ति	वल्लभा	— प्रिया
		त्रिनयना	— (सूर्य, चंद्र, अग्नि रूप) तीन नेत्रों वाली
कला	— अमृतमयी अमा कला		
मालिनी	— आदि शान्त वर्ण माला शक्ति	वाग्वादिनी	— परा आदि वाणी रूप विमर्शमयी
मातंगी	— मतंग ऋषि की कन्या	भैरवी	— (भरन, रवन, वमन करने वाली) भैरव की शक्ति
विजया जया	— विजय और जय रूपिणी	ह्रींकारी	— ह्रींकार रूप (माया बीज)
भगवती	— सर्व ऐश्वर्य मयी		
देवी	— क्रीडन शीला	त्रिपुरा	— इडा, पिंगला, सु-

	षम्ना रूपिणी		बाली
परापरमयी	— स्थूल सूक्ष्म रूपिणि	इति	— इन इन नामों से
माता	— जगत् जननी	असि	— तुम ही हो
कुमारी	— भेद को नष्ट करने		

आई पल्लवितैः परस्परयुतैर्द्वि[1]त्रिक्रमाद्यक्षरैः
काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिरथो क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः।
नामानि त्रितुरे ! भवन्ति खलु यान्यत्यन्तगुह्यानि ते
तेभ्यो भैरवपत्नि विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ॥१६॥

पदच्छेदः

आई पल्लवितैः परस्परयुतैः द्वि त्रि क्रम आदि अक्षरैः
कआद्यैः क्षअन्त गतैः स्वर आदिभिः अथो क्षअन्तैः च तैः सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे ! भवन्ति खलु यानि अत्यन्त गुह्यानि ते
तेभ्यः भैरवपत्नि ! विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यः नमः ॥१६॥

त्रिपुरे !	-- हे त्रिपुरा देवी !	अथो	— फिर
आई पल्लवितैः	आ और ई से लेकर प्रसर में आये हुये	क्षान्तैः च	— क्ष जिनके अन्त में है
		तैः	— उन (क से क्ष तक)
परस्परयुतैः	— आपस में मिले हुए	सस्वरैः	— स्वरों सहित (अक्षरों से)
काद्यैः	— क से लेकर		
क्षान्तगतैः	— क्ष तक गये हुए	यानि	— जो
द्वि त्रि	— दो या तीन के	अत्यन्त	— बहुत ही
क्रमाद्यक्षरैः	— क्रम के अक्षरों से	गुह्यानि	— रहस्य
स्वरादिभिः	— आदि में स्वर रख कर	नामानि	— नाम
		ते	— तुम्हारे

१. पाठभेदः–"द्विद्विक्रमा"=द्विद्वि वर्णक्रममाश्रित्य

खलु — निश्चय ही
भवन्ति — बनते हैं
भैरवपत्नि ! — हे भैरव की शक्ति !
तेभ्यः — उन सब
विंशति- सहस्त्रेभ्यः — बीस हज़ार से भी
परेभ्यः — अधिक (नामों को) (अनन्त)
नमः — नमस्कार हो ।

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं
भारत्यास्त्रिपुरेत्यनन्यमनसो यत्राद्यवृते स्फुटम् ।
एकद्वित्रिपदक्रमेण कथितस्तत्पाद संख्याक्षरैः
मन्त्रोद्धारविधिर्विशेषसहितः सत्संप्रदायान्वितः ॥२०॥

पदच्छेदः

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिः इयं कृत्वा मनः तद्गतं
भारत्याः त्रिपुराइति अनन्यमनसः यत्र आद्यवृते स्फुटम् ।
एकद्वि त्रिपद क्रमेण कथितः तत्पाद संख्या अक्षरैः
मन्त्र उद्धार विधिः विशेष सहितः सत्संप्रदाय अन्वितः ॥२०॥

इयं — यह
भारत्याः — [सरस्वती] भगवती की
स्तुतिः — स्तुति
बुधैः — ज्ञानवानों को
निपुणं — [अपने] तीक्ष्ण
मनः — मन को
तगद्तं कृत्वा — उसी [देवी में] एकाग्र करके
अनन्य मनसा — [और] न किसी में लगाये हुए (मन से [यह विमर्श करते हुए कि]
त्रिपुराइति — त्रिपुरा देवी ही [सब का कारण है]
बोद्धव्या — जाननी चाहिए,
यत्र — जिस स्तुति में
आद्यवृत्ते — पहले ही श्लोक में
एकद्वि त्रि — पहले दूसरे और तीसरे
पदक्रमेण — पदों के क्रम से

तत्	— उस [श्लोक] के		अथवा गुरु क्रम से
पाद	— पादों की	अन्वितः	— युक्त
सांख्याक्षरैः	— गिनती के अक्षरों के अनुस्वार	मंत्रोद्धार	— मंत्र के निकालने का
		विधिः	— ढंग
विशेषसहितः	— विशेषता के सहित	स्फुटम्	— प्रकट रूप से
सत्संप्रदाय	— परमार्थ सम्प्रदाय	कथितः	— कहा है ।

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किं वा नया चिन्तया
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति नरो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि ।
सञ्चिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमानं हठात्
त्वद्भक्त्या मुखरी कृतेन रचितं यस्मान्मयापि स्फुटम्।२१।

पदच्छेदः

स अवद्यं निर् अवद्यम् अस्तु यदि वा किं वा अनया चिन्तया
नून स्तोत्रम् इदं पठिष्यति नरः यस्य अस्ति भक्तिः त्वयि ।
सञ्चिन्त्य अपि लघुत्वम् आत्मनि दृढं सञ्जायमानं हठात्
त्वत् भक्त्या मुखरी कृतेन रचितं यस्मात् मया अपि स्फुटम् ।२१।

अनया	— इस	अस्तु	— (यह स्तुति) हो
चिन्तया	— चिन्ता से	यस्य	— जिस पुरुष की
किं ?	— क्या लाभ है ? (अर्थात् कुछ भी नहीं)	त्वयि	— तुझ में
		भक्तिः	— भक्ति
		अस्ति	— है
इदं स्त्रोत्रं	— कि यह स्तोत्र	(स) नरः	— (वह) मनुष्य
सावद्यं	— (चाहे) दोष सहित	नूनं	— अवश्य
यदि वा	— अथवा	पठिष्यति	— पढेगा (विमर्श करेगा)
निरवद्यं	— दोष रहित		

यस्मात	— क्योंकि	लघुत्वं	— अल्पभाव को[1]
त्वत्	— तुम्हारी	संचित्य	— विचार करके (विमर्श करके)
भक्त्या	— भक्ति से	अभि	— भी
मुखरी कृतेन	— वाचाल (तीक्ष्ण विमर्श युक्त बने हुए	हठात्	— हठ से
मया अपि	— मैंने भी	स्फुट	— (और) स्फुट भाव से
आत्मनि	— अपने स्वरूप में	रचितभ्	— [इस स्त्रोत की] रचना की।
[ध्रुवै	— निश्चय करके]		
दृढं	— दृढता से		
संजायमानं	— उत्पन्न हुए		



१. दूसरा अर्थ—हल्कापन अर्थात् शरीर, प्राण इत्यादि के अभिमान का अभाव।



अथ चर्चस्तवो द्वितीय: ॥

नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै

आनन्दसुन्दरपुरन्दरमुक्तमाल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य ।
पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु-
मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥१॥

पदच्छेदः

आनन्द सुन्दर पुरन्दर मुक्त माल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य ।
पाद अम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु
मञ्जीर शिञ्जित मनोहरम् अम्बिकायाः ॥१॥

आनन्द-	— आनन्द के कारण		(देहाभिमान रूप)
सुन्दर-	— सुन्दर प्रसन्न बने हुए	मौलौ	— सिर पर
		हठेन	— जोर से (आग्रह से)
पुरन्दर-	— इन्द्र से (डाली हुई)	निहितं	— रखा हुआ (तथा)
मुक्तमाल्यं	— मोतियों की माला वाला		देहाभिमान को हटाने में समर्थ
महिषासुरस्य	— महिषासुर राक्षस के		

मुञ्जु- — सुन्दर
मञ्जीर- — पायलों की
शिंजित- — मीठी झंकार से
मनोहरम् — मन को मोहित (शुद्ध अहं विमर्श पूर्ण) करने वाला
अम्बिकायाः — जगत माता का
पादाम्बुजं — चरणकमल (ज्ञान क्रिया रूप)
मे — मेरी
बिजयाय — (भेद पर) विजय के लिए
भवतु — हो। (मेरे सभी मलों को दूर करें)

सौन्दर्यविभ्रमभुवो भुवनाधिपत्य-
सम्पत्तिकल्पतरवस्त्रिपुरे ! जयन्ति।
एते कवित्वकुमुदप्रकरावबोध-
पूर्णेन्दवस्त्वयि जगज्जननि प्रणामः ॥२॥

पदच्छेदः

सौन्दर्य विभ्रमभुवः भुवनआधिपत्य
सम्पत्तिकल्पतरवः त्रिपुरे ! जयन्ति ।
एते कवित्व कुमुद प्रकरअवबोध
पूर्ण इन्दवः त्वयि जगत् जननि ! प्रणामाः ॥२॥

(हे)जगज्जननि !स्वतन्त्र विच्छक्ति ! हे जगत की माता
त्रिपुरे ! — त्रिपुरे जाग्रत्, स्वप्न सुषुप्ति को पूर्ण करने वाली,
सौन्दर्य- — (आपके प्रकाश-विमर्श रूप)सुन्दरता के
विभ्रम- — विकास की
—भुवो — भूमियां उत्पत्तिस्थान
भुवन- — तीन भुवनों के [भूः भुवः स्वः]
आधिपत्य- — स्वामिभाव रूपी
संपत्ति- — सम्पदा के पाने के लिए
कल्पतरवः — कल्पवृक्ष के समान [हैं]
कवित्व — [तथा] सर्वज्ञता

	रूपी		जैसी (हैं) इस कारण
कुमुद-	— कमलों (कुमुद पुष्पों) के	त्वयि	— (भक्तों के) तुम्हारे प्रति
प्रकर-	— समूह को	एते	— यह (बार बार किए हुए)
अवबोध-	— विकास में लाने के लिए	प्रणामाः	— प्रणाम
पूर्णेन्दवः	— परिपूर्ण चन्द्रमा	जयन्ति	— विजय शाली हैं।

देवी को बार बार प्रणाम करने से तीनों भुवनों का स्वामिभाव तथा सर्वज्ञता इत्यादि शक्तियां प्राप्त होती हैं।

सर्वज्ञता से सर्वकर्त्ताभाव, पूर्णता, व्यापकता तथा नित्यता भी समझ लेनी चाहिए।

देवि ! स्तुतिव्यतिकरे कृतबुद्धयस्ते
वाचस्पतिप्रभृतयोपि जडीभवन्ति।
तस्मान्निसर्गजडिमा कतमोहमऽत्र
स्तोत्रं तव त्रिपुरतापनपत्नि ! कर्तुम् ॥३॥

पदच्छेदः

देवि ! स्तुति व्यतिकरे कृतबुद्धयः ते
वाचस्पति प्रभृतयः अपि जडी भवन्ति।
तस्मात् निसर्ग जडिमा कतमः अहम् अत्र
स्तोत्र तव त्रिपुरतापन पत्नि ! कर्तुम् ॥३॥

देवि !	— हे देवि ! सृष्ठि-आदि क्रीडा करने-वाली	ते	— तुम्हारी
		स्तुति-	— स्तुति करने के स्वरूप-वर्णन

व्यतिकरे — उद्योग में
कृतबुद्धयः — तीक्ष्ण बुद्धि वाले
वाचस्पति- — बृहस्पति
प्रभृतयः — इत्यादि [देववर्ग]
अपि — भी
जडी — असमर्थ
भवन्ति — हो जाते हैं
तस्मातं — इस कारण
त्रिपुर- — हे त्रिपुरासुर को आणव, मायीय तथा कार्ममल रूपी अथवा स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर पर देहाभिमान त्रिपुरासुर रूप
तापन- — मारने वाले (शिव) की
पत्नि ! — अभिन्न शक्ति !
अत्र — इस संसार में
तव — तुम्हारी
स्तोत्रं — स्तुति
कर्तुं — करने के लिए
निसर्ग- — स्वभाव से ही
जडिमा — मन्द बुद्धि
अहं — मैं
कतमः — किस गिनती में हूं ।

मातस्तथापि भवतीं भवतीव्रताप-
विच्छित्तये स्तुतिमहार्णवकर्णधारः ।
स्तोतुं भवानि ! स भवच्चरणारबिन्द-
भक्तिग्रहः किमपि मां मुखरी करोति ।।४।।

पदच्छेदः

मातः ! तथा अपि भवती भंव तीव्रताप-
विच्छित्तये स्तुति महा अर्णव कर्णधारः ।
स्तोतुं भवानि ! स भवत् चरण अरविन्द-
भक्तिग्रहः किम् अपि मा मुखरी करोति ।।४।।

मातः ! — हे माता !
तथापि — फिर भी (मूर्ख होते हुए भी)
भव- — संसार के

तीव्र-	— तीक्ष्ण	चरणारविन्द—	चरण कमलों की
ताप-	— संताप के		(अधिक)
विच्छित्तये	— नाश करने के लिए	भक्तिग्रहः	— भक्ति का हठ
स	— वह	भवतीं	— आप की
स्तुयि	— स्तुति	स्तोतुँ	— स्तुति करने के लिए
महार्णव-	— (जो अज्ञान रूपी) बडे सागर को (पार करने के लिये)	मां	— मुझे
		भवानि !	— हे भवानी !
		किमपि	— कुछ कुछ
कर्णधारः	— मल्लाह रूप है (तथा)	मुखरी	— वाचाल
		करोति	— बनाता है। (प्रेरित करता है)
भवत्-	— आपके		

सूते जगन्ति भवती भवती बिभर्ति
जागर्ति तत्क्षयकृते भवती भवानि ।
मोहं भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि
लीलायितं जयति चित्रमिदं भवत्याः ॥५॥

पदच्छेदः

सूते जगन्ति भवती भवती बिभर्त्ति
जागर्ति तत्क्षयकृते भवती भवानि !
मोह भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि
लीलायितं जयति चित्रम् इदं भवत्याः ॥५॥

भवानि !	— शिव से पृथ्वी तक ३६ तत्त्व रूप जगत की सृष्टि करने वाली हे शंकर की अभिन्न शक्ति !	भवती	— आप ही
		जगन्ति	— जगतों की
		सूते,	— सृष्टि करती हो,।
		भवती	— आप ही
		(जगन्ति)	— जगतों को

बिभर्ति, — धारण (स्थिति)[2] करती हो,
भवती — आप ही
तत्क्षयकृते — उन जगतों को नाश करने के लिए
जागर्ति, — जागती रहती हो [संहार]
भवती — आप ही
मोहं — मोह को
भिनत्ति, — नाश करती हो[3] [अनुग्रह]
भवती — आप ही
रुणद्धि, — स्वरूप का गोपन करती हो [पिधान]
इदं — यह
चित्रं — आश्चर्यमय
भवत्या, — आपकी
लीलायितं — क्रीड़ा (पंचकृत्यरूप अर्थात् सृष्टि, स्थिति, संहार, विलय, अनुग्रह)
जयति — विजय शाली है।

"सृष्टि संहारकर्तारं विलयस्थिति कारकम्।
अनुग्रहकर देवं प्रणतार्ति विनाशनम् ॥" उ० स्तो०

यस्मिन्मनागऽपि नवाम्वुजपत्रगौरि !
गौरि ! प्रसादमधुरां दृशमाऽदधासि ।
तस्मिन्निरन्तरमनङ्गशरावकीर्ण
सीमन्तिनीनयनसन्ततयः पतन्ति ॥६॥

पदच्छेदः

यस्मिन् मनाक् अपि नव अम्बुजपत्र गौरि !
गौरि ! प्रसादमधुरां दृशम् आदधासि ।
तस्मिन् निरन्तरम् अनङ्ग शर अवकीर्ण-
सीमन्तिनी नयन सन्ततयः पतन्ति ॥६॥

(हे) नव — (हे) नये
अम्बुज- — खिले हुए कमल के
पत्र- — पत्ते जैसी
गौरि ! — (निर्मल) गौरी

	पार्वती !	अवकीर्ण-	— चंचल बनी हुई
यस्मिन्	— जिस भक्त पर	सीमन्तिनी-	— सुन्दर शक्तियों की
मनाक् अपि	— थोडे भी	नयन-	— दृष्टि की
प्रसाद	— अनुग्रह के कारण	सन्ततयः	— पंक्तियां
मधुरां	— आनन्ददायक	निरन्तरं	— लगातार
दृशं	— दृष्टि	पतन्ति	— पडती हैं ।
आदधासि,	— डालती हो		अर्थात् सुन्दर अणि-
तस्मिन	— उस भक्त पर		मादिक शक्तियां
(हे) गौरि !	— हे पार्वती !		उसके वश में हो
अनङ्ग-	— कामदेव के		जाती हैं ।
शर-	— बाणों के कारण		

पृथ्वीभुजोऽप्युदयनप्रवरस्य तस्य
विद्याधरप्रणतिचुम्बितपाद पीठः ।
यच्चक्रवर्तिपदवीप्रणयः स एष
त्वत्पादपङ्कजरजःकणजः प्रसादः ।।७।।

पदच्छेदः

पृथ्वीभुजः अपि उदयन प्रवरस्य तस्य
विद्याधर प्रणति चुम्बित पाद पीठः
यत् चक्रवर्ति पदवी प्रणयः स एष
त्वत् पाद पङ्कजरजः कणजः प्रसादः ।।७।।

तस्य	— उस	यत्	— जो
उदयन-प्रवरस्य	— उदयनप्रवर नाम वाले	विद्याधर-	— विद्याधरों के
		प्रणति-	— प्रणामों से
पृथ्वीभुजः	— सम्राट् राजा को	चुम्बित-	— चूमे हुए (स्पर्श किए हुए)
अपि	— भी		

पादपीठः	— चरणों के आसन	रजः-	— धूलि के
	वाजी	कणजः	— कणों से उत्पन्न हुआ
चक्रवर्ती-	— चक्रवर्ती राजा की	प्रसादः	— अनुग्रह
पदवी-	— पदवी की	(आसीत्)	— (था)
प्रणयः(आसीत्)	प्राप्ति [थी]		(सभी विद्याधर गण
स	— वह [प्राप्ति]		श्रेष्ट उदयन के
एष	— इस		चरणों को प्रणाम
त्वत्-	— तुम्हारे		करते थे। क्योंकि
पाद-	— चरण		वह जगदम्बा देवी
पंकज-	— कमलों की		का अनन्य भक्त था)

कल्पद्रुमप्रसवकल्पितचित्रपूजा-
मुद्दीपितप्रियतमामदरक्तगीमिम् ।
नित्यं भवानि ! भवतीमुपपीणयन्ति
विद्याधराः कनकशैलगुहागृहेषु ।।८।।

पदच्छेदः

कल्पद्रुम प्रसव कल्पित चित्र पूजाम्
उद्दीपित प्रियतमा मदरक्त गीतिम् ।
नित्यं भवानि ! भवतीम् उपवीणयन्ति
विद्याधराः कनक शैल गुहागृहेषु ।।८।।

भवानि !	— हे भवानी !	कल्पद्रुम-[1]	— कल्पवृक्ष के
विद्याधराः	— ज्ञानी पुरुष विद्या-	प्रसव-	— फूलों से
	धर (देवता) वर्ग	कल्पित-	— की हुई (आपकी)
	(नित्य)	चित्रपूजां	— आश्चर्यजनक पूजा

१. राग द्वेष रहित, सुख दुःख में समान रह कर विषय—
[शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध] रूप फूलों से पूजा करते हैं ।

	वाली तथा	कनक शैल-[1]	— सुमेरु मर्वत की
उद्दीपित-	— चमकाये हुए	गुहा-	— गुफा रूपी
प्रियतमा-	— अत्यन्त प्रिय	गृहेषु	— घरों में
मद-	— मस्ती के	नित्यं	— निरन्तर
रक्त-	— राग से भरे हुए विमर्श युक्त	उपवीणयन्ति	— सूक्ष्म वीणा पर गायन करते हैं (आपका विमर्श करते हैं ।)
गीतिम्	— गीतों वाली		
भवतीं	— आपका [वे विद्या-घर]		

लक्ष्मीवशीकरणकर्मणि कामिनीना-
माऽकर्षणव्यतिकरेषु च सिद्धमन्त्रः ।
नीरन्ध्रमोहतिमिरच्छिदुरप्रदीपो
देवि ! त्वदऽङ्घ्रिजनितो जयति प्रसादः ॥६॥

पदच्छेदः

लक्ष्मी वशीकरण कर्मणि कामिनीनाम्
आकर्षण व्यतिकरेषु च सिद्धमन्त्रः ।
निःरन्ध्रमोहतिमिर छिदुर प्रदीपः
देवि ! त्वद् अङ्घ्रि जनितः जयति प्रसादः ॥६॥

देवि !	— हे देवी !	कर्मणि	— काम में (तथा)
लक्ष्मी-[2]	— लक्ष्मी को	कामिनीनां[3]	— सुन्दर शक्तियों को
वशीकरण-	— वश करने के	आकर्षण	— अपने ओर खेंचने के

१. शरीर रूपी सुमेरु पर्वत में इन्द्रिय रूपी गुफायें हैं ।

२. मोक्षलक्ष्मी, भक्तिलक्ष्मी, विजयलक्ष्मी, आदि

३. सर्वज्ञता, सर्भकर्तृता, पूर्णता, व्यापकता और नित्यता रूप ।

व्यतिकरेषु	— उद्योग के काम में	छिदुर-	— नाश करने के लिए
सिद्धमन्त्रः	— न चूकने वाले मन्त्र रूप	प्रदीपः	— दीपक रूप
		त्वद्-	— तुम्हारे
च	— और	अंघ्रि-	— चरणों से
नीरन्ध्र-	— बहुत ही घने	जनितो	— उपजा हुआ
मोह-	— मोह रूपी (आणव मल)	प्रसादः	— अनुग्रह
		जयति	— जय शील है।
तिमिर-	— अन्धेरे को		

देवी के चरणों का अनुग्रह प्राप्त करने से भोग तथा मोक्ष लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है। अलौकिक शक्तियों को वश करने में यह अचूक मंत्र जैसा काम देता है और सांसारिक मोह रूपी अंधेरे से बचने के लिए ज्ञान प्रकाश देकर दीपक का काम देता है।

देवि ! त्वदऽङ्घ्रिनरवरत्नभुवो मयूरवाः
प्रत्यग्रमौक्तिकरुचो मुदमुद्वहन्ति।
सेवानतिव्यतिकरे सुरसुन्दरीणां
सीमन्तसीम्नि कुसुमस्तवकायितं यैः ॥१०॥

पदच्छेदः

देवि ! त्वत् अङ्घ्रि नरव रत्नभुवः मयूरवाः
प्रत्यग्र मौक्तिकरुचः मुदम् उद्वहन्ति।
सेवा नति व्यतिकरे सुरसुन्दरीणाम्
सीमन्त सीम्नि कुसुमस्तवकायितं यैः ॥१०॥

देवि !	— हे देवी !	नरवरत्न-	— नाखुन रूपी रत्नों से
त्वत्-	— तुम्हारे	भुवो	— उत्पन्न हुई
अंघ्रि-	— चरणों के	मयूरवाः	— किरणें

प्रत्यग्र	— नित्य नवीन	सेवा-	— सेवा (अभ्यास)
मौक्तिक-	— मोतियों का	नति-	— और प्रणाम (भक्ति) के
रुचो	— दीप्ति वाले (परम)	व्यतिकरे	— मेल से और समावेश के
मुदम्	— हर्ष को	कुसुम-	— फूलों के
उद्वहन्ति	— धारण करती हैं	स्तवक-	— गुच्छे की तरह [सुन्दर]
यैः	— जिन (किरणों) ने	आयितम्	— रचाया है ।
सुरसुन्दरीणाम्	देवस्त्रियों की		
सीमन्त-	— मांग[1] के		
सीम्नि	— स्थान को		

मूर्ध्नि स्फुरत्तुहिनदीधितिदीप्तिदीप्तं
मध्ये ललाटममरायुधरश्मिचित्रम् ।
हृच्चक्रचुम्बि हुतभुक्कणिकानुरूपं
ज्योतिर्यदेतदिदमम्ब ! तव स्वरूपम् ।।११।।

पदच्छेदः

मूर्ध्नि स्फुरत् तुहिन दीधिति दीप्ति दीप्तं
मध्ये ललाटम् अमर आयुध रश्मि चित्रम् ।
हृत् चक्र चुम्बि हुतभुक् कणिका अनुरूपं
ज्योतिः यत् एतत् इदम् अम्ब ! तव स्वरूपम् ।।११।।

अम्ब !	— हे माता !	तुहिन- दीधिति-	— शीतल किरणों युक्त [चन्द्रमा] के
मूर्ध्नि	— सिर पर		
स्फुरत्-	— चमकते हुये		

१. मांम - सिर के बालों की बीज वाली रेखा जिसको कश्मीरी में 'सुम' कहते हैं ।

तुलना कीजिए—ऐंद्रस्येव ......

दीप्ति-	— प्रकाश से		एक रूप
दीप्तं	— चमकता हुआ,	हुतभुक्-	— अग्नि के
ललाटं	— माथे के	कणिका-	— कण के
मध्ये	— बीच में	अनुरूपं	— सदृश
अमरायुध-	— इन्द्रधनुष्य की	यत्	— जो
रश्मि-	— किरणों के समान	एतत्	— यह
चित्रं	— विचित्रता वाला	ज्योतिः	— प्रकाश है
	[रंगारंग] तथा	इदम्	— यह
	प्रकाशविमर्श युक्त	तव	— तुम्हारा ही
हृच्चक्र-	— हृदय चक्र को	स्वरूपम्	— स्वरूप है।
चुम्बि-	— स्पर्श करने वाले		

रूपं तव स्फुरितचन्द्रमरीचिगौर-
माऽलोकते शिरसि वागधिदैवतं यः।
निःसीमसूक्तिरचनामृतनिर्भरस्य
तस्य प्रसादमधुराः प्रसरन्ति वाचः ॥१२॥

पदच्छेदः

रूपं तव स्फुरित चन्द्र मरीचि गौरम्
आलोकते शिरसि वाक् अधिदैवतं यः।
निःसीम तु उक्ति रचना अमृत निर्भरस्य
तस्य प्रसाद मधुराः प्रसरन्ति वाचः ॥१२॥

यः	— जो भक्त	गौरं	— सफेद (निर्मल)
तव	— तुम्हारे	वाक्	— वाणी के
स्फुरित	— विकसित (परिपूर्ण)	अधिदैवतं	— अधिष्ठाता रूप
चन्द्रमरीचि	— चन्द्र किरणों जैसे	रूपं	— स्वरूप को

शिरसि	— द्वादशान्त में	अमृत	— अमृत से
आलोकते	— देखे (ध्यान से एकाग्र होकर साक्षात्कार करे)	निर्भरस्य	— परिपूर्ण
		तस्य	— उस (भक्त) की
		प्रसाद	— तुम्हारे अनुग्रह से
निःसीम	— सीमा रहित	मधुराः	— मीठी (परमार्थपूर्ण)
सूक्ति	— सुन्दर वाणियों की	वाचः	— वाणियां
रचना	— रचना रूपी	प्रसरन्ति	— निकलती हैं।

सिन्दूरपांसुपटलच्छुरितामिव द्यां
त्वत्तेजसा जतुरसस्नपितामिवोर्वीम्।
यः पश्यति क्षणमपि त्रिपुरे! विहाय
व्रीडां मृडानि! सुदृशस्तमनुद्रवन्ति ॥१३॥

पदच्छेदः

सिन्दूर पांसु पटल छुरितां इव द्यां
त्वत् तेजसा जतु रस स्नपितां इव उर्वीम्।
यः पश्यति क्षणम् अपि त्रिपुरे! विहाय
व्रीडां मृडानि! सुदृशः तम् अनुद्रवन्ति ॥१३॥

त्रिपुरे!	— हे त्रिपुरा देवी! [भूर्भुवः स्वः तीनों लोकों तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरों में व्यापिनी चिच्छक्ति]	द्यां	— आकाश को (द्वादशान्त शक्ति को)
		सिन्दूर	— सिन्दूर की
		पासु-	— सूक्ष्म धूलि के
		पटल-	— समूह से (ज्ञानशक्ति)
		छुरितां	— रंगा हुआ [आच्छादित]
यः	— जो भक्त		
त्वत् तेजसा	— तुम्हारे तेज से,	इव	— जैसा, तथा

उर्वी	— पृथवी को (हृदय)	सुदृशः	— सुन्दर नेत्रों वाली (उत्तम शक्तियाँ)
जतुरस	— महावर[1] के रस में (क्रिया शक्ति से)	व्रीडां	— लज्जा को
स्नपितां	— धुली हुई (उस रस में डूबी हुई)	विहाय	— छोडकर (अर्थात् विवश होकर)
इव	— जैसी	तम्	— उस (भक्त) के
क्षणमपि	— एक क्षण मात्र भी	अनुद्रवन्ति	— पीछे दौडती है। (उसके वश में हो जाती हैं)
पश्यति	— देखे (साक्षात्कार करे)		
मृडानि !	— हे देवि !		

मातर्मुहूर्तमपि यः स्मरति स्वरूपं
लाक्षारसप्रसरतन्तुनिभं भवत्याः ।
ध्यायन्त्यनन्यमनसस्तमनङ्गतप्ताः
प्रद्युम्नसीम्नि सुभगत्वगुणं तरुण्यः ।।१४।।

पदच्छेदः

मातः ! मुहूर्तम् अपि यः स्मरति स्वरूपं
लाक्षारस प्रसर तन्तुनिभं भवत्याः ।
ध्यायन्ति अनन्यमनसः तं अनङ्ग तप्ता
प्रद्युम्न सीम्नि सुभगत्वगुणं तरुण्यः ।।१४।।

मातः !	— हे माता !	रस-	— रस से
यः	— जो (भक्त)	प्रसर-	— निकली हुई
लाक्षा-	— लाख के	तन्तु-	— सूक्ष्मतार के

---

१. महावर—जिसे कश्मीरी में 'अलुत' कहते हैं।

निभं	— समान	तरुण्यः	— उत्तम शक्तियां
भवत्याः	— आपके	अनन्य-	— एकाग्र
स्वरूपं	— स्वरूप का	मनसः	— मन करके (अर्थात् उस भक्त की ओर लगाये हुए मन से)
मुहूर्तं	— एक क्षणमात्र		
अपि	— भी		
स्मरति	— विमर्श करे,	प्रद्युम्न-	— कामदेव के
सुभगत्व-	— सुन्दर	सीम्नि	— स्थान पर (अर्थात् उसी को काम देव मानकर)
गुणं	— गुणों वाले		
तं	— उस (भक्त) का		
अनंग-	— कामदेव से	ध्यायन्ति	— उसका ध्यान करती है।
तप्ताः	— पीडित		

यो॓ऽयं चकास्ति गगनार्णवरत्नमिन्दु-
यो॓ऽयं सुराऽसुरगुरुः पुरुषः पुराणः।
यद्वाममर्धमिदमऽन्धकसूदनस्य
देवि ! त्वमेव तदिति प्रतिपादयन्ति ॥१५॥

पदच्छेदः

यः अयं चकास्ति गगन अर्णव रत्नं इन्दुः।
यः अयं सुर असुर गुरुः पुरुषः पुराणः।
यत् वामं अर्ध इदं अन्धकसूदनस्य
देवि ! त्वम् एवं तत् इति प्रतिपादयन्ति ॥१५॥

देवि !	— हे देवी !		रूपी
यो	— जो	अर्णव-	— समुद्र का
अयं	— यह	रत्नम्	— रत्न
गगन-	— (चित्) आकाश	इन्दुः	— चन्द्रमा

चकास्ति,	— चमकता है,	सूदनस्य	— मारने वाले (शिव) का
यो	— (और) जो		
अयं	— यह	इदं	— यह
सुर-	— देवताओं	वामम्	— बायां
असुर-	— तथा राक्षसों का	अर्थ	— (शरीर का) आधा भाग है,
गुरुः	— गुरु		
पुराणः	— आदिसिद्ध	तत्	— यह (सभी कुछ)
पुरुषः	— पुरुष है,	त्वम् एव	— तुम ही हो
यत्	— तथा जो	इति	— इस बात को
अन्धक-	— कामदेव के	प्रतिपादयन्ति	— सिद्ध करते हैं।

इच्छानुरूपमऽनुरूपगुणप्रकर्ष
सङ्कर्षणि ! त्वमनुसृत्य यदा बिभर्षि ।
जायेत स त्रिभुवनैक गुरुस्तदानी
देवः शिवोऽपि भुवनत्रयसूत्रधारः ।।१६।।

पदच्छेदः

इच्छा अनुरूपं अनुरूप गुण प्रकर्ष
सङ्कर्षणि ! त्वम् अनुसृत्य यदा बिभर्षि ।
जायेत स त्रिभुवन एक गुरुः तदानीम्
देवः शिवः अपि भुवन त्रयसूत्रधारः ।।१६।।

संकर्षणि !	— हे आकर्षण कारिणी !	अनुरूपं अनुसृत्य	— [स्वतन्त्र इच्छा के अनुसार
त्वम्	— आप	अनुरूप-	
यदा	— जब	गुण-	— [योग्य गुणों के
इच्छा-	[	प्रकर्ष	— उत्कर्ष को

बिर्भाष	— धारण करती हो	एक-	— अद्वितीय
तदानीं	— तब ही	गुरुः	— पिता (तथा)
स	— वह	भुवनत्रय-	— तीनों भुवन रूपी
देवः	— (क्रीडनशील) देवता		(नाटक का)
शिवः	— शिव	सूत्रधारः	— सूत्र धार
अपि	— भी	जायेत	— बनता है।
त्रिभुवन-	— तीनों भुवनों का		

रुद्राणि ! विद्रुममयीं प्रतिमामिव त्वां
ये चिन्तयन्त्यरुणकान्तिमऽनन्यरूपाम्।
तानेत्य पक्ष्मलदृशः प्रसभं भजन्ते
कण्ठावसक्तमृदुबाहुलतास्तरुण्यः ॥१७॥

पदच्छेद;

रुद्राणि ! विद्रुममयीं प्रतिमां इव त्वां
ये चिन्तयन्ति अरुण कान्तिम् अनन्यरूपाम्
तान् एत्य पक्ष्मलदृशः प्रसभं भजन्ते
कण्ठ अवसक्त मृदुबाहु लताः तरुण्यः ॥१७॥

रुद्राणि !	— हे रुद्र की रोदन, द्रावण (सृष्टि, संहार) करने वाली शक्ति !	कान्तिम्	— दीप्ति वाली
		अनन्य-	— अनुपम (अलौकिक)
		रूपाम्	— रूप वाली
		विद्रुममयीं	— रुद्राक्षमालाधारिणी
ये	— जो भक्त	प्रतिमां इव	जैसी मूर्ति का
त्वां	— आपको		
अरुण-	— प्रातः काल के सूर्य की (तरह लाल)	चिन्तयन्ति	— विमर्श करते हैं,
		पक्ष्मलदृशः	— सुन्दर नेत्रों वाली

कण्ठ	— (उन भक्तों के गले में	तान्	— उनके
		एत्य	— पास जाकर
अवसक्त	— डाली हुई	प्रसभं	— बलपूर्वक (हठपूर्वक)
मृदु	— कोमल	भजन्ते	— (उनका) सेवन करती हैं। (उनके आधीन रहती है)
बाहुलता:	— लता जैसी कोमल बाहुओं वाली		
तरुण्यः	— युवतियां (शक्तियां)		

सुन्दर नेत्रों वाली युवतियां हठ से उनके पास जाकर उन को भजती है (धारण करती है) और उनके गले में अपनी कोमल बाजुओं को डालती है। अर्थात् नाना प्रकार की मनमोहनी सिद्धियां बिना आयास के उनको प्राप्त होती हैं :

त्वद्रूपमुल्लसितदाडिमपुष्परक्त-
मुद्भावये मदनदैवतमक्षरं य: ।
तं रूपहीनमपि मन्मथनिर्विशेष-
मालोकयत्युरुनितम्बभरास्तरुण्य: ॥१८॥

पदच्छेद:

त्वत् रूपं उल्लसित दाडिम पुष्प रक्तम्
उद्भावयेत् मदनदैवतम् अक्षरं यः ।
तं रूपहीनम् अपि मन्मथनिर्विशेषम्
आलोकयन्ति उरुनितम्ब भराः तरुण्यः ॥१८॥

यः	— जो [भक्त]	पुष्प-	— फूल [के सदृश]
उल्लसित-	— खिले हुए	रक्तम्	— लाल वर्ण [क्लीं बीजाक्षर को]
दाडिम-	— अनार के		

अक्षरं	— अविनाशी	उरुनितम्बभराः	भारी वक्षः स्थलों वाली [ज्ञान क्रिया शक्ति युक्त]
त्वत्	— तुम्हारे		
रूप	— स्वरूप को		
मदनदैवतं	— कामदेव की जैसी	तरुण्यः	— युवतियां [शक्तियां]
उद्भावयेत्	— भावना करे	मन्मथ- निर्विशेषं	— कामदेव के समान
तम्	— उस [भक्त] को		
रूपहीनम् अपि	— (यदि वह कुरूप भी हो	आलोकयन्ति	— देखती हैं। (मानती है)

सभी शक्तियां उस भक्त के अधीन रहती हैं। उसी पुरुष को कामदेव मानती हैं।

ध्याताऽसि हैमवति ! येन हिमांशुरश्मि-
मालाऽमलद्युतिरऽकल्मषमानसेन ।
तस्यऽविलम्बमऽनवद्यमऽनल्पकल्प-
मल्पैर्दिनैः सृजसि सुन्दरि ! वाग्विलासम् ॥१९॥

पदच्छेदः

ध्याता असि हैमवति ! येन हिमअंशु रश्मि
माला अमल द्यु तिः अकल्मष मानसेन ।
तस्य अविलम्बम् अनवद्यम् अनल्प कल्पम्
अल्पैः दिनै सृजसि सुन्दरि ! वाक् विलासम ॥१९॥

हैमवति !	— हे हिमालय की पुत्री ! बर्फ जैसी निर्मल !		[एकाग्र चित्त होकर]
		हिमांशु-	— चन्द्रमा की
येन	— जिस	रश्मि-	— किरणों के
अकल्मष-	— निर्मल	माला-	— समूह जैसी
मानसेन	— मन वाले भक्त ने	अमल-	— निर्मल

द्युतिः — दीप्ति, पूर्ण का
ध्याता — तुम्हारा ध्यान [विमर्श]
असि — किया हो
सुन्दरि ! — हे सुन्दर शक्तियों से शोभायमान देवी !
तस्य — उस [भक्त] का (तुम)
अविलम्बं — शीघ्र ही [तत्क्षणात्]

अनवद्यं — दोष रहित प्रकार से
अनल्पकल्पं — अनन्त
वाग् — वाणियों का
विलासम् — विकास
अल्पैः — थोड़े ही
दिनैः — दिनों में
सृजसि — उत्पन्न करती हो। (उसकी वाणियां विकसित होती हैं)

आधारमारुतनिरोधवशेन येषां
सिन्दूररंजितसरोजगुणानुकारि।
तीव्रंहृदि स्फुरति देवि ! वपुस्त्वदीयं
ध्यायन्ति तानिह समीहितसिद्धसाध्याः ॥२०॥

पदच्छेदः

आधार मारुत निरोध वशेन येषां
सिन्दूर रञ्जित सरोज गुण अनुकारि।
तीव्रं हृदि स्फुरति देवि ! वपुः त्वदीयं
ध्यायन्ति तान् इह समीहित सिद्ध साध्याः ॥२०॥

देवि ! — हे चित्स्वरूपिणी जगत को चमकाने वाली !
येषां — जिन [भक्तों] के
हृदि — हृदय में
आधार- — मूलाधार के
मारुत- — वायु के

निरोध-वशेन — रोकने के (वश करने के) कारण
सिन्दूर- — सिन्दूर से
रंजित- — रंगे हुए
सरोज- — कमल के
गुण- — सूक्ष्म तार
अनुकारि — जैसा

त्वदीयं	— तुम्हारा	समीहित-	— चाहे हुए (अभिल-षित)
तीव्रं	— दीप्तिमान (शीघ्र)	सिद्ध	— सिद्धदेव (और)
वपुः	— स्वरूप	साध्याः	— साध्य देव
स्फुरति	— प्रकट हो जाता है	ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं। उसी भक्त को अपना इष्ट देव मानते हैं।
तान्	— उन (भक्तों) को		
इह	— इस संसार में		

त्वामैन्दवीमिव कलामनुभालदेश-
मुद्भासिताम्बरतलामऽवलोकयन्तः।
सद्यो भवानि! सुधियः कवयो भवन्ति
त्वं भावनाहितधियां कुल कामधेनुः ॥२१॥

पदच्छेदः

त्वाम् ऐन्दवीम् इव कलाम् अनुभालदेशम्
उद्भासित अम्बरतलाम् अवलोकयन्तः।
सद्यः भवानि! सुधियः कवयः भवन्ति
त्वम् भावना आहितधियां कुलकामधनुः ॥२१॥

भवानि!	— हे शंकर की व्यापक शक्ति!		(समान विस्तृत) वाली को
त्वां	— (जो) तुझे	अवलोकयन्तः	— प्रत्यक्ष विमर्श करते हुए
ऐन्दवीम्	— चन्द्रमा की		
कलाम्	— (अमा) कला के	सुधियः	— ज्ञानी बुद्धिमान जन
इव	— समान	सद्यः	— शीघ्र ही
अनुभाल-	— माथे की	कवयः	— सर्वज्ञ
देशम्	— जगह पर	भवन्ति	— बन जाते हैं
उद्भासित-	— चमकाये हुए	त्वं	— आप
अम्बरतलाम्	— (चित्) आकाशतल	भावना-	— श्रद्धा

आहित-	— धारण किए हुए	कामधेनुः	— कामनाओं की पूर्णा
धियां	— बुद्धिवालों की		करने वाली हो ।
कुल-	— सभी		

त्वां व्यापिनीति समना इति कुण्डिलीति ।
त्वां कामिनीति कमलेति कलावतीति ।
त्वां मालिनीति ललितेत्यपराजितेति
देवि ! स्तुवन्ति विजयेति जयेत्युमेति ॥२२॥

पदच्छेदः

त्वां व्यापिनी इति समना इति कुण्डली इति
त्वां कामिनी इति कमला इति कलावती इति ।
त्वां मालिनी इति ललिता इति अपराजिता इति
देवि ! स्तुवन्ति विजया इति जया इति उमा इति ॥२२॥

देवि !	— हे देवि ! भक्त जन	त्वाम्	— आपको
त्वां	— आपको	कामिनी	— इच्छा शक्ति रूपा
व्यापिनी	— सब में व्यापक	इति	— ऐसे
इति	— ऐसे	कलावती	— अकार से क्षकार तक वर्णरूपी कलाओं से युक्त
समना	— निर्मल चित् रूप अन्तःकरणों वाली (ॐ की ग्यारवीं मात्रा)	इति	— ऐसे
		कमला	— कमल रूप संकोच विकासमयी
इति	— ऐसे		
कुण्डली	— कुण्डलिनी शक्ति रूपा	इति	— ऐसे
		त्वाम्	— आपको
इति	— ऐसे	मालिनी	— वर्णमाला रूपिणी

इति — ऐसे
ललिता — सुन्दर
इति — ऐसे
अपराजिता — न किसी से परास्त हुई (सब से उत्कृष्ट)
इति — ऐसे
विजया — सब पर जय पाने वाली
इति — ऐसे
जया — जय देने वाली,
इति — इन इन नामों से
उमा इति — उमा ऐसे
स्तुवन्ति — आपकी स्तुति करते हैं।

ये चिन्तयन्त्यरुणमण्डलमध्यवर्ति
रूपं तवाम्ब ! नवयावकपङ्कपिङ्गम् ।
तेषां सदैव कुसमायुधबाणभिन्न-
वक्षःस्थला मृगदृशो वशगा भवन्ति ।।२३।।

पदच्छेदः

ये चिन्तयन्ति अरुण मण्डल मध्यवर्ति
रूपं तव अम्ब ! नव यावक पङ्क पिङ्गम् ।
तेषां सदा एव कुसुम आयुध बाण भिन्न-
वक्षः स्थलाः मृगदृशः वशगाः भवन्ति ।।२३।।

अम्ब ! — हे माता !
ये — जो (भक्त)
अरुण- — सूर्य
मण्डल — मण्डल के
मध्यवर्ति — बीच रहने वाले और
नव — नवीन
यावकपंक- — गारे के समान महावर
पिंगम् — जैसे लाल
तव — तुम्हारे
रूपं — स्वरूप का
चिन्तयन्ति — चिन्तन [विमर्श] करते हैं
तेषां — उन [भक्तों] का
कुसुमायुध- — कामदेव के
बाण- — बाणों से
भिन्न- — छलनी बने हुए
वक्षःस्थलाः — छाती वाली (हृदय वाली) और

मृगदृशः	— सुन्दर नेत्रों वाली [उत्तम शक्तियां]	वशगा	— वश
		भवन्ति	— हो जाती हैं।
सदैव	— नित्य ही		

उतप्तहेमरुचिरे त्रिपुरे! पुनीहि
चेतश्चिरन्तनमघौघवनं लुनीहि।
कारागृहे निगडबन्धनपीडितस्य
त्वत्संस्मृतौ झटिति मे निगडास्त्रुटन्तु ॥२४॥

पदच्छेदः

उत्तप्त हेम रुचिरे त्रिपुरे ! पुनीहि
चेतः चिरन्तनम् अघओघ वनं लुनीहि।
कारागृहे निगडबन्धन पीडितस्य
त्वत् संस्मृतौ झटिति मे निगडाः त्रुटन्तु ॥२४॥

उत्तप्त-	— हे आग में तपाये हुए	[मे] चेतः	— मेरे मन में स्थित
हेम-	— [निर्मल] सोने के समान	चिरन्तनम्	— अनन्त जन्मों के
		अघौघ	— पापों के घने
रुचिरे	— दीप्ति वाली !	वनं	— जंगल को
त्रिपुरे ![1]	— हे त्रिपुरा !	लुनीहि[3]	— काटो
[मे] पुनीहि[2]	— [मुझ को] पवित्र बना	कारागृहे	— [शरीर रूपी] जेल खाने में

---

१. जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में परिपूर्ण भाव से व्यापिनी अर्थात् शिव की अभिन्न शक्ति।

२. देहाभिमान दूर करके मेरा आणव मल विनष्ट कर।

३. भेद रूपी मेरा माया मल समाप्त कर।

निगड-	— बेडियों[1] के		[स्वरूप का विमर्श करते ही]
बन्धन	— बन्धनों से	झटिति	— तत्क्षणात्
पीडितस्य	— पीडित हुए	निगडाः	— बन्धन
मे	— मुझे	त्रुटन्तु[2]	— टूट जायें [मैं मुक्त हो जाऊँ।]
त्वत्	— आपकी		
संस्मृतौ	— स्मृति करते ही		

शर्वाणि ! सर्वजनवन्दितपादपद्मे !
पद्मच्छदच्छविविडम्बितनेत्रलक्ष्मि ! ।
निष्पापमूर्तिजनमानसराजहंसि !
हंसि त्वमापदमऽनेकविधां जनस्य ॥२५॥

पदच्छेद:

शर्वाणि ! सर्वजन वन्दित पाद पद्मे !
पद्म छद छवि विडम्बित नेत्र लक्ष्मि !
निष्पाप मूर्ति जन मानस राजहंसि ।
हंसि त्वम् आपदम् अनेक विधां जनस्य ॥२५॥

शर्वाणि !	— हे संहार कारिणी ! शिव की शक्तिः	छवि-	— शोभा के तुल्य
सर्वजन-	— हे सब लोगों से	विडम्बित-	— एक समान बने हुए
वन्दित-	— प्रणाम किये गये	नेत्रलक्ष्मि !	— नेत्रों की शोभा वाली !
पादपद्मे !	— चरण कमलों वाली	निष्पापमूर्ति-	पाप रहित [पवित्र एवं निर्मल अन्तः
पद्मच्छद-	— कमल पत्रों की		

१. अभिलाष रूपी बेडियां ।
२. पुण्य पाप रूप कर्मों से संपन्न शरीर का कारण अथवा कार्म मल दूर कर ।

	करणों वाले]	त्वम्	— आप
जन-	— भक्त जनों के	जनस्य	— शरणागत भक्तों की
मानस-	— मन रूपी मानसरो-वर की	अनेकविधां	— हर प्रकार की
		आपदं	— आपदाओं को
राजहंसि	— हे राज हंसिनी ! हे देवी !	हंसि	— नष्ट करती हो ।

त्वत्पादपङ्कजरजः प्रणिपातपूतैः
पुण्यैरनल्पमतिभिः कृतिभिः कवीन्द्रैः ।
क्षीरक्षपाकरदुकूलहिमावदाता
कैरप्यवापि भुवनत्रितयेऽपि कीर्तिः ।।२६।।

पदच्छेदः

त्वत् पाद पङ्कजरजः प्रणिपात पूतैः
पुण्यैः अनल्प मतिभिः कृतिभिः कविइन्द्रैः ।
क्षीर क्षपाकर दुकूल हिम अवदाता
कैः अपि अवापि भुवन त्रितये अपि कीर्तिः ।।२६।।

त्वत्-	— तुम्हारे	मतिभिः	— बुद्धि वाले
पाद-	— चरण	कृतिभिः	— कृतकृत्य
पंकज-	— कमलो की	कैरपि	— कुछ विरले ही [भक्तों]
रजः	— धूलि को		
प्रणिपात-	— प्रणाम करने से	कवीन्द्रैः	— महान कवियों ने
पूतैः	— पवित्र	भुवन-	— [तीनों ही भुवनों
पुण्यैः	— पुण्यशील बने हुए [अंतः करणों वाले]	त्रितयेऽपि	[(भूः भवः स्वः)में
		क्षीर-	— दूध
अनल्प-	— बडी	क्षपाकर-	— चन्द्रमा

दुकूल-	— रेशम [और]	कीर्तिः	— यश
हिम-	— बर्फ [जैसा]	अवापि	— प्राप्त किया।
अवदाता	— निर्मल		

त्वद्रूपैकनिरूपणप्रणयिताबन्धो दृशोस्त्वद्गुण-
ग्रामाकर्णनरागिता श्रवणयोस्त्वत्संस्मृतिश्चेतसि।
त्वत्पादार्चनचातुरी करयुगे त्वत्कीर्तनं वाचि मे
कुत्रापि त्वदुपासनव्यसनिता मे देवि! मा शाम्यतु।।२७।।

पदच्छेदः

त्वत् रूप एक निरूपण प्रणयिता बन्धः दृशोः त्वत् गुण-
ग्राम आकर्णन रागिता श्रवणयोः त्वत् संस्मृतिः चेतसि।
त्वत् पाद अर्चन चातुरी करयुगे त्वत् कीर्तनं वाचि मे
कुत्र अपि त्वत् उपासन व्यसनिता मे देवि! मा शाम्यतु।।२७।।

देवि!	— हे देवी!	ग्राम	— समूह के (अनन्त)
मे	— मेरे	आकर्णन-	— सुनने का
दृशोः	— नेत्रों में	रागिता	— राग (हो),
त्वत्-	— तुम्हारे	(मे) चेतसि	— (मेरे) मन में
रूप-	— स्वरूप की	तवत्-	— तुम्हारा
एक-	— एकता के	संस्मृतिः	— बार बार स्मरण (हो),
निरूपण-	— साक्षात्कार करने के		
प्रणयिता	— प्रेमभाव का निरन्तर	(मे) करयुगे	— (मेरे) दोनों हाथों में
बन्धः	— लगाव (रहे)	त्वत्-	— तुम्हारे
(मे)श्रवणयोः	— (मेरे) कानों में	पाद-	— चरणों की
त्वत्-	— तुम्हारे	अर्चन-	— पूजा की
गुण-	— गुणों के	चातुरी	— चतुरता (हो),

मे वाचि	— मेरी बाणी में	मे	— मुझे
त्वत्-	— तुम्हारा	त्वत्	— तुम्हारी
कीर्तनं	— गुणगान (हो)	उपासन-	— उपासना करने की
कुत्र	— (किसी देश, काल या अवस्था में) किसी भी दूसरे इन्द्रिय में	व्यसनिता	— लगन
		मा	— मत
		शाम्यतु	— कम हो जाय।
अपि	— भी		

उद्दामकामपरमार्थसरोजषण्ड-
चण्डद्युतिद्युतिमुपासितषट्प्रकाराम् ।
मोहद्विपेन्द्रकदनोद्यतबोधसिंह-
लीलागुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि ॥२८॥

पदच्छेदः

उद्दाम काम परमार्थ सरोज षण्ड-
चण्ड द्युति द्युतिम् उपासित षट् प्रकाराम् ।
मोह द्विप इन्द्र कदन उद्यत बोध सिंह-
लीला गुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि ॥२८॥

अहं	— मैं		[देवी को]
उद्दाम-	— (उत्कृष्ट) बड़ी	उपासित-	— [1]उपासना की हुई
काम-	— इच्छा शक्ति के	षट्प्रकाराम्	— [2]छः प्रकार से [पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन द्वारा]
परमार्थ-	— परमार्थ रूपी		
सरोज-	— कमल		
षण्ड-	— समूह को (विकसित) करने के लिए	मोह-	— तथा मोह (अज्ञान) रूपी
चण्डद्युति-	— सूर्य की जैसी	द्विपेन्द्र-	— हाथी को
द्युतिम्	— दीप्ति [तेज] वाली,	कदन-	— मारने के लिए

उद्यत- — तयार,
बोध- — ज्ञान रूपी
सिंह- — शेर की
लीलागुहां — क्रीडा स्थान
भगवतीं — भगवती
त्रिपुरां — त्रिपुरा को

(मैं)प्रणाम करता हूं। देह, प्राण, इन्द्रिय आदि समेत उसी चिच्छक्ति में लय हो जाता हूं

गणेशवटुकस्तुता रतिसहायकामान्विता
स्मरारिवरविष्टरा कुसुमबाणबाणैर्युता।
अनङ्गकुसुमादिभिः परिवृता च सिद्धैस्त्रिभिः
कदम्बवनमध्यगा त्रिपुरसुन्दरी पातु नः ।।२६।।

पदच्छेदः

गणेश वटुक स्तुता रति सहाय काम अन्विता
स्मर अरि वर विष्टरा कुसुम बाण बाणैः युता।
अनङ्ग कुसुम आदिभिः परिवृता च सिद्धैः त्रिभिः
कदम्ब वनमध्यगा त्रिपुर सुन्दरी पातु नः ।।२६।।

गणेश- — गणेश (प्राण)
वटुक- — (और) भैरव (अपान) से
स्तुता — स्तुति की हुई, (अभ्यास की हुई
रति- — रति (बुद्धि)
सहाय- — सहित
कामान्विता — कामदेव (मन) के सम्बन्ध वाली,

स्मरारि- — शिव (जैसा)
वर- — उत्तम
विष्टरा — आसन वाली,
कुसुमबाण- — कामदेव के
बाणैः — बाणों
युता — युक्त [अर्थात् मन की तेज और चंचल वृत्तियों युक्त]
अनङ्ग- — कामदेव

कुसुमादिभिः	— फूलों इत्यादि से [अर्थात् मन की वृत्तियों से]	कदम्बवन-	— कदम्बवन के [अर्थात् मायारूपी के भेद]
च	— और	मध्यगा	बीच में गई हुई (व्यापक)
सिद्धैस्त्रिभिः	— तीन सिद्धों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अथवा समान, उदान, व्यान] से	त्रिपुरसुन्दरी	— त्रिपुरसुन्दरी भगवती (चिति शक्ति)
परिवृता	— परिवारित[1] की हुई	नः	— हमें
		पातु	— पालन करे। (अपने अभेद स्वरूप में समाविष्ट करे)

यः स्तोत्रमेतदनुवासरमीश्वरायाः
श्रेयस्करं पठति वा यदि वा श्रृणोति ।
तस्येप्सितं फलति राजभिरीड्यतेऽसौ
जायेत स प्रियतमो हरिणेक्षाणानाम् ॥३०॥

पदच्छेदः

यः स्तोत्रम् एतत् अनुवासरम् ईश्वरायाः
श्रेयः करं पठति वा यदि वा शृणोति ।
तस्य ईप्सितं फलति राजभिः ईड्यते असौ
जायेत स प्रियतमः हरिण ईक्षणानाम् ॥३०॥

यः	— जो (भक्त)	श्रेयस्करं	— कल्याणकारी (भोग तथा मोक्ष देने वाले)
ईश्वरायाः	— भगवती (ऐश्वर्यशालिनी) के	स्तोत्रं	— स्तोत्र को
एतत्	— इस	अनुवासरं	— प्रतिदिन (निरन्तर)

१. परिवारित—परिवार है जिस का

पठति वा	— पढ़ता है, (विमर्श सहित)	ईड्यते	— पूजा जाता है,
यदि वा	— या यदि	स	— (और) वह
शृणोति	— सुनता है	हरिण-	— हिरण की जैसी
तस्य	— उसके	ईक्षणानाम्	— आंखों वाली (सुन्दर और चंचल शक्ति-यों) का
ईप्सितं	— कांक्षित (मनोरथ) (भोग और मोक्ष)	प्रियतमो	— अत्यन्त प्यारा
फलति,	— सिद्ध हो जाते हैं	जायेत	— बनता है। शक्ति चक्र का चक्रेश्वर बन जाता है
असौ	— वह		
राजभिः	— राजाओं से		

ब्रह्मेन्द्ररुद्रहरिचन्द्रसहस्त्ररश्मि-
स्कन्दद्विपाननहुताशनवन्दितायै।
वागीश्वरि! त्रिभुवनेश्वरि! विश्वमात-
रन्तर्बहिश्च कृतसंस्थितये नमस्ते ॥३१॥

पदच्छेदः

ब्रह्मा इन्द्र रुद्र हरि चन्द्र सहस्त्ररश्मि-
स्कन्द द्विप आनन हुताशन वन्दितायै।
वाक् ईश्वरि! त्रिभुवन ईश्वरि! विश्वमातः!
अन्तः बहिः च कृतसंस्थितये नमः ते ॥३१॥

वाक्-ईश्वरि!	— हे परा आदि चारों वाणियों की स्वामिनी सरस्वती, परा रूपिणी!	त्रिभुवन-	— तीनों भुवनों की
		ईश्वरि!	— स्वामिनी, (परा)
		विश्वमातः!	— जगत माता! उत्पन्न करने वाली
		ब्रह्मा-	— ब्रह्मा,

इन्द्र-	— इन्द्र,	अन्तर्	— अन्दर अन्तः-
रुद्र-	— रुद्र, (रोदन, द्रावन करने वाली)		करणों)
		बहिश्च	— और बाहिर (बहि-ष्करणों में)
हरि-	— विष्णु,		
चन्द्र-	— चन्द्रमा,	कृत-	— की हुई
सहस्त्ररश्मि	— सूर्य,	संस्थितये	— स्थिति वाली अर्थात् ठहरी हुइ
स्कन्ध-	— कुमार,		
द्विपानन-	— गणेश (और)	ते	— तुझ चिति भगवती को
हुताशन-	— अग्नि से		
वन्दितायै	— प्रणाम की हुई	नमः	— नमस्कार हो ।

इति श्री पञ्चस्तव्यां चर्चास्तवः द्वितीयः समाप्तः ।।२।।





अथ तृतीयो घटस्तवः

ॐ नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै ।।

देवि! त्र्यम्बकपत्नि! पार्वति! सति! त्रैलोक्यमातः! शिवे!
शर्वाणि! त्रिपुरे! मृडानि! वरदे रुद्राणि! कात्यायिनि ! ।
भीमे! भैरवि! चण्डि! शर्वरि! कले! कालक्षये शूलिनि!
त्वत्पादप्रणतानऽनन्यमनसः पर्याकुलान्पाहि नः ।।१।।

पदच्छेदः

देवि ! त्र्यम्बकपत्नि ! पार्वति ! सति ! त्रैलोक्यमातः ! शिवे !
शर्वाणि ! त्रिपुरे ! मृडानि ! वरदे ! रुद्राणि ! कात्यायिनि !।
भीमे ! भैरवि ! चण्डि ! शर्वरि ! कले ! कालक्षये ! शूलिनि !
त्वत्पादप्रणतान् अनन्यमनसः परिआकुलान् पाहि नः ।।१।।

देवि ! — हे देवी (क्रीडन शील) !

त्र्यम्बक- — हे [तीन नेत्रों वाले]
पत्नि ! — शिव की पत्नी ! [अभिन्न शक्ति]

पार्वती — हे पार्वती [हिमालय की बेटी] !

सति ! — हे सत्ता वाली ! सत् रूप

त्रैलोक्य- — हे तीन लोकों

मातः — की माता !

शिवे ! — हे कल्याण कारिणी !

शर्वाणि — हे शर्व अवतार की शक्ति [संहार कारिणी !]

त्रिपुरे ! — हे त्रिपुरा देवी ! [तीनों शरीरों में व्यापक]

मृडानि — हे शिव की शक्ति !

वरदे ! — हे भोग तथा मोक्ष

रूप] वर देने वाली

रुद्राणि ! — हे रुद्र[1] की शक्ति !

कात्यायिनि! — लाल वस्त्र पहने वाली

भीमे ! — हे [दुष्टों के लिए] भयानक रूपवाली !

भैरवि ! — हे भैरव [शिव की] शक्ति !

चण्डि ! — हे तेजस्वी रूप वाली

शर्वरि ! — हे शिव की शक्ति !

कले ! — हे अमा कला रूपिणी, अकार से क्षकार तक वर्ण माला रूपिणी, कला, विद्या, राग, काल, नियति रूपिणी इत्यादि

कालक्षये ! — हे काल को नाश करने वाली ! काल कलना से अतीत

शूलिनि ! — हे त्रिशूल [इच्छा, ज्ञान, क्रिया] धारिणी

त्वत्पाद- — तुम्हारे चरणों

प्रणतान् — में शरण गए हुए

अनन्यमनसः — और किसी में मन न लगाये हुए एकाग्र मन वाले

परि- — चारों ओर से

आकुलान् — [हर प्रकार] व्याकुल

नः — हम भक्तों की

पाहि — पालना कीजिये । (अपना स्वरूप प्रकट कीजिये)

उन्मत्ता इव सग्रहा इव विषव्यासक्तमूर्च्छा इव
प्राप्तप्रौढमदा इवाति विरहग्रस्ता इवार्ता इव ।
ये ध्यायण्ति हि शैलराजतनयां धन्यास्त एकाग्रत-
स्त्यक्तोपाधिविवृद्धरागमनसो ध्यायन्ति वामभ्रुवः ।।२।।

पदच्छेदः

उन्मत्ताः इव सग्रहाः इव विष व्यासक्तमूर्च्छाः इव
प्राप्तप्रौढमदाः इव अतिविरहग्रस्ताः इव आर्ताः इव ।

---

१. सृष्टि संहार करने में समर्थ

ये ध्यायन्ति हि शैलराजतनयां धन्याः ते एकाग्रतः
त्यक्त उपाधि विवृद्धरागमनसः ध्यायन्ति वामभ्रुवः ॥२॥

उन्मत्ता इव	— नशे में चूर जैसे,
सग्रहा इव	— आविष्ट जैसे,
विष-	— जहर
व्यासक्त-	— लगने से
मूर्च्छा	— मूच्छित
इव	— जैसे,
प्राप्त-	— प्राप्त हुए
प्रौढ-	— तीव्र
मदा	— नशे वाले
इव	— जैसे,
अति-	— बहुत ही [चिर काल से]
विरह-	— [अत्यन्त प्रेमी की] विरह [की पीड़ा से
ग्रस्ता इव	— ग्रस्त जैसे [उसी पीडा में डूबे हुए]
आर्ता इव	— आर्त जैसे,[1]
ये	— जो भक्त
हि	— निश्चय करके
शैलराज-	— हिमालय की
तनयां	— पुत्री [पार्वती] [पर्वत के समान न टलने वाले चित-स्वभाव वाली का
ध्यायन्ति	— (एकाग्र होकर) ध्यान करते हैं
ते	— वे भक्त
धन्याः	— सौभाग्य शाली हैं
एकाग्रतः	— समाहितता के कारण
त्यक्त-	— छोडे हुए
उपाधि-	— शरीर की व्याधि (तथा)
विवृद्ध-	— बढे हुए
राग-	— प्रेम भरे
मनसः	— मन वाले,
(तान्)	— ऐसे भक्त का
वामभ्रुवः	— शिव की शक्तियां (इच्छा-ज्ञान-क्रिया)
ध्यायन्ति	— ध्यान करती हैं (उस भक्त को प्राप्त होती हैं।)

देवि! त्वां सकृदेव यः प्रणमति क्षोणीभृतस्तं नम-
न्त्याजन्मस्फुरदङ्घ्रिपीठबिलुठत्कोटीरकोटिच्छटाः।

१. एकाग्रता और उत्सुकता के कारण विवश जैसे

यस्त्वामर्चति सोऽर्च्यते सुरगणैर्यः स्तौति स स्तूयते
यस्त्वां ध्यायति तं स्मरार्तिविधुरा ध्यायन्ति वामभ्रुवः।३।

पदच्छेद;

देवि ! त्वां सकृत् एव यः प्रणमति क्षोणीभृतः तं नमन्ति
आजन्मस्फुरत् अङ्घ्रिपीठविलुठत् कोटीर कोटि छटाः।
यः त्वाम् अर्चति सः अर्च्यते सुरगणैः यः स्तौति सः स्तूयते
यः त्वां ध्यायति तं स्मर आर्त्तिविधुराः ध्यायन्ति वामभ्रुवः ।।३।।

देवि !	... हे देवी !	अर्चति	— पूजा करता है
यः	... जो [भक्त]	सः	— वह
त्वां	— तुम्हें	सुरगणैः	— देवताओं के समूहों से
सकृत् एव	— [एक बार ही (निरन्तर छेद रहित)	अर्च्यते	— पूजा जाता है,
		यः	— जो
प्रणमति	— प्रणाम करता है	स्तौति	— स्तुति करता है
तं	— उस (भक्त) को	स	— वह
आजन्म	— जन्म से ही	स्तूयते	— स्तुति किया जाता हैं,
स्फुरत्-	— विकास में आये हुए		
अङ्घ्रि-पीठ-	— [चरणों के पीठ पर (पादपीठ पर)	यः	— जो
		त्वां	— तुम्हारा
विलुठत्-	— लुढकते हुए	ध्यायति	— ध्यान करता है (एकाग्र चित से तुम में लीन हो जाता है)
कोटीर-	— ताजों की		
कोटि-	— चोटियों की		
छटाः	— शोभा वाले	तं	— उसको
क्षोणीभृतः	— (चक्रवर्ती) राजा	स्मर-आर्ति-विधुरा	— (कामदेव की पीडा से चंचल बनी हुई
नमन्ति,	— नमस्कार करते हैं,		
यः	— जो (पुरुष)		
त्वां	तुम्हें	वामभ्रुवः	— सुन्दर शक्तियां

ध्यायन्ति	— ध्यान करती हैं। (उसके वश हो	जाती है।]

ध्यायन्ति ये क्षणमपि त्रिपुरे ! हृदि त्वां
लावण्ययौवनधनैरपि विप्रयुक्ताः।
ते विस्फुरन्ति ललितायतलोचनानां
चित्तैकभित्तिलिखितप्रतिमाः पुमांसः ॥४॥

पदच्छेदः

ध्यायन्ति ये क्षणम् अपि त्रिपुरे ! हृदि त्वां
लावण्य यौवन धनैः अपि विप्रयुक्ताः।
ते विस्फुरन्ति ललित आयत लोचनानां
चित्त एक भित्ति लिखित प्रतिमाः पुमांसः ॥४॥

त्रिपुरे !	— हे देवी !	पुमांसः	— पुरुष
ये	— जो	ललित	— अति सुन्दर [प्राप्त करने योग्य]
लावण्य-	— सुन्दरता,		
यौवन-	— जवानी [तथा]	आयत	बडी [सर्वज्ञता से शोभित]
धनैः	— धनों से		
विप्रयुक्ता	— हीन	लोचनानां	— नेत्रों वाली [ज्ञान वाली] शक्तियों के
अपि	— भी		
क्षणम्	— थोडी देर के लिये	चित्ते	— मन रूपी
अपि	— भी	एक-	— केवल एक ही
हृदि	— अपने हृदय में [समाहित होकर]	भित्ति-	— आधार पर
		लिखित-	— खिची हुई
त्वां	— तुम्हारा	प्रतिमाः	— मूर्तियां जैसे
ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं	विस्फुरन्ति	— प्रकट होते हैं।
ते	— वे [भक्त]		

एतं किं नु दृशा पिबाम्युत विशाम्यस्याङ्गमङ्गैर्निजैः
किं वामुं निगलाम्यनेन सहसा किं वैकतामाश्रये ।
तस्येत्थं विवशो विकल्पघटनाकूतेन योषिज्जनः
किं तद्यन्न करोति देवि ! हृदये यस्य त्वमावर्तसे

पदच्छेदः

एतं किं नु दृशा पिबामि उत विशामि अस्य अङ्गं अङ्गैः निजैः
किं वा अमुं निगलामि अनेन सहसा किं वा एकतां आश्रये ।
तस्य इत्थं विवशः विकल्लपघटना आकूतेन योषित् जनः
किं तत् यत् न करोति देवि ! हृदये यस्य त्वम् आवर्तसे ।।५।।

देवि ! — हे देवी,
यस्य — जिस (भक्त) के
हृदये — हृदय में
त्वम् — आप
आवर्तसे — बार बार आकर वास करती हो (अपने अनुग्रह का संचार करती हो)
एतं — इस (भक्त) को
किं — क्या
नु — निश्चय ही
दृशा — नेत्रों द्वारा
पिबामि — पी जाऊँ (टिकटिकी बांध कर देखती रहूं) ?
उत — अथवा

अस्य — इसके
अंगम् — अंग में
निजैः — अपने
अंगैः — अंगों से
विशामि — प्रवेश करूं (आलिंगित होकर एकता प्राप्त करूं) ?
वा — या
किं — क्या
अमूं — इस पुरुष को
निगलामि — निगल जाऊँ (इस को अपने स्वरूपसे अभिन्न बनाऊँ) !
वा — या
किं वा — क्या
अनेन — इस पुरुष के साथ

सहसा	— जल्दी ही (तत्क्षण)	योषितजनः[1]	— शिव की शक्तियां
एकताम्	— ऐक्य भाव का	विवशः	— बेबस (हो जाती है)
आश्रये	— आश्रय लूं ?	तत्	— (फिर) वह
तस्य	— उस (भक्त के बारे में)	किं	— कौन सा कार्य है
		यत्	— जो कार्य
इत्थं	— इस इस प्रकार के	न करोति	— (वह शक्तियां उस भक्त के लिए सिद्ध) नहीं करती है ?
विकल्प-	— विचारों की		
घटना-	— रचना के		
आकूतेन	— प्रयोजन से		

विश्वव्यापिनि यद्वदीश्वर इति स्थाणावनन्याश्रयः
शब्दः शक्तिरिति त्रिलोकजननि ! त्वय्येव तथ्यस्थितिः ।
इत्थं सत्यपि शक्नुवन्ति यदिमाः क्षुद्रा रुजो बाधितुं
त्वद्भक्तानऽपि न क्षिणोषि च रुपा तद्देवि! चित्रं महत्।६।

पदच्छेदः

विश्वव्यापिनि यत् वत् ईश्वरः इति स्थाणौ अनन्याश्रयः
शब्दः शक्तिः इति त्रिलोकजननि ! त्वयि एव तथ्यस्थितिः ।
इत्थं सति अपि शक्नुवन्ति यत् इमाः क्षुद्राः रुजः बाधितुं
त्वत् भक्तान् अपि न क्षिणोषि च रुषा तत् देवि ! चित्रं महत् ।६।

त्रिलोकजननि	— हे तीन लोकों की माता !	स्थानौ	— नित्य शिव के विषय में
यद्वत्	— जिस प्रकार	अनन्याश्रयः	— दूसरे के आश्रय की अपेक्षा न करने
विश्वव्यापिनि	— जगत में व्याप्ति		

१. योषिज्जनः :- युवतियां [जवान स्त्रियां] अर्थात् वह शक्तियां जो शिव को आधार रूप स्वामी मानती हैं । यह नित्यता के गुण से परिपूर्ण हैं इस कारण इन का जवान रहना अर्थात् बूढी होकर मर न जाना स्वतः सिद्ध ही है ।

	वाला [स्वातंत्र्य]	त्वत्	— तुम्हारे
ईश्वरः	— ईश्वर (ऐश्वर्यशाली)	भक्तान्	— भक्तों को
इति शब्दः	— इस प्रकार का शब्द (प्रयुक्त होता है); (इसी प्रकार)	अपि	— भी
		बाधितुं	— रुकावट पैदा करने में
शक्तिः	— शक्ति (शिव का	शक्नुवन्ति	— समर्थ बने
इति शब्दः	— यह शब्द	च (त्वम्)	— और (तुम)
त्वयि एव	— तुम्हारे ही विषय में	रुषा	— क्रोधित होकर (उन रोगादिकों को)
तथ्य स्थितिः	— परमार्थ स्थिति वाला है (सत्य रूप से प्रयुक्त हो सकता है)	न क्षिणोषि	— नष्ट करती हो
इत्थं	— ऐसा	देवि !	— हे देवी !
सति अपि	— होने पर भी	तत्	— वह
यत्	— यदि	महत्	— बडा ही
इमाः	— यह	चित्रम्	— आश्चर्य हैं। (ऐसा नहीं होना चाहिए)
क्षुद्राः	— तुच्छ		
रुजो	— रोग आदि		

इन्दोर्मध्यगतां मृगाङ्कसदृशच्छायां मनोहारिणीं
पाण्डुत्फुल्लसरोरुहासनगतां स्निग्धप्रदीपच्छविम् ।
वर्षन्तीममृतं भवानि ! भवतीं ध्यायन्ति ये देहिन-
स्ते निर्मुक्तरुजो भवन्ति विपदः प्रोज्झन्ति तान्दूरतः॥७॥

पदच्छेदः

इन्दोः मध्यगता मृगअङ्कसदृशछायां मनोहारिणीम्
पाण्डुउत्फुल्ल सरोरुह आसन गतां स्निग्ध प्रदीपछविम् ।

वर्षन्तीम् अमृत भवानि ! भवतीं ध्यायन्ति ये देहिनः
ते निर्मुक्तरुजः भवन्ति विपदः प्रोज्झन्ति तान् दूरतः ॥७॥

भवानि ! — हे देवी !
ये — जो
देहिनः — शरीरधारी
भवतीं — आपके स्वरूप का
इन्दोः[1] — चन्द्रमा के
मध्यगतां — बीच में स्थित,
मृगाङ्क-[2] — मृग है चिह्न जिस का [चन्द्रमा के]
सदृशच्छाया — समान [निर्मल] शोभा वाली का,
मनोहारिणीं — मन को हरने वाली का,
पाण्डु- — श्वेत रंग के
उत्फुल्ल- — खिले हुए
सरोरुह-[3] — कमल के
आसनगतां — आसन पर ठहरी हुई का,
स्निग्ध- — तेल से भरे
प्रदीप- — दिये की

च्छविम्[4] — दीप्ति वाली का,
अमृतं[5] — [और] अमृत
वर्षन्तीं — बरसाती हुई [ऐसे स्वरूप का]
ध्यायन्ति, — एकाग्र चित होकर विमर्श करते हैं,
ते — वे [जीव, भक्त]
निर्मुक्त-रुजो — [छुटे हुए रोग वाले [नीरोग]] [संसार रूपी जन्म मरण रोग से मुक्त]
भवन्ति, — हो जाते हैं, और
विपदः — विपत्तियां
तान् — उन भक्तों को
दूरतः — दूर
प्रोज्झन्ति — छोड देती हैं । (वे विपत्तियों से छुट-कारा पाते हैं)

पूर्णेन्दोः शकलैरिवातिबहलैः पीयूषपूरैरिव
क्षीराब्धेर्लहरीभरैरिव सुधापङ्कस्य पिण्डैरिव ।

---

१. प्रमेय रूप चन्द्रमा वेद्य समूह में व्यापक
२. मृग, चंचल तथा सुन्दर (स्पन्दात्मक तथा आनन्द दायक)
३. निर्मल कमल—संकोच विकास स्वभाव, अहंता इदन्तामय
४. अटल दीप्ति—अविनाशी चैतन्य स्वरूप
५. अमृत वर्षन्तीं अर्थात् मुक्ति देने वाली ।

प्रालेयैरिव निर्मितं तव वपुर्ध्यायन्ति ये श्रद्धया
चित्तान्तर्निहतार्तितापविपदस्ते सम्पदं बिभ्रति ।।८।।

पदच्छेद:

पूर्णइन्दोः शकलैः इव अति बहलैः पीयूषपूरैः इव
क्षीर अब्धेः लहरीभरैः इव सुधापङ्कस्य पिण्डैः इव ।
प्रालेयैः इव निर्मितं तव वपुः ध्यायन्ति ये श्रद्धय
चित्त अन्तर् निहत आर्ति ताप विपदः ते सम्पदं बिभ्रति ।।८।।

पूर्ण	— पूर्ण	लहरी-	— तरंगों के
इन्दोः	— चन्द्रमा के	भरैः[3]	— समूहों से
शकलैः[1]	— गोल अकार से	इव	— मानो
इव	— मानो	निर्मितं	— (बना हुआ)
(निर्मित)	— (बना हुआ)	सुधा-	— अमृत के
अति	— बहुत ही	पङ्कस्य	— (गाढे) गारे के
बहलैः	— बढे हुए	पिंडैः[4]	— गोलों से
पीयूष-	— अमृत के	इव	— मानो
पूरैः[2]	— प्रवाहों से	(निर्मित)	— बना हुआ
इव	— मानो	प्रालेयैः[5]	— बर्फ़ से
(निर्मितं)	— (बना हुआ)	इव	— मानो
क्षीराब्धेः	— क्षीर समुद्र के	(निर्मित)	— बना हुआ (ऐसे ऐसे)

---

१. पूर्ण चन्द्रमा जैसा—अमृत का आगारः दोनों, (अहं, इदं) अभिन्न (चित्, आनन्द) २. अमृत के प्रवाह—चन्द्रमा से निकले हुए । (भेद का आरम्भ) (इच्छा या स्वातंत्र्य शक्ति ३. तरंगों का समूह—भेद प्रकट । (ज्ञान शक्ति का स्फार) ४. अमृत के गारे के गोले-अमृत अप्रकट, चित् रूप का संकोच ओर जगत भेदमय (क्रिया शक्ति का स्फार) ५. बर्फ़ से बना हुआ (अत्यंत संकोच, माया शक्ति) चित् रस आश्यानता

तव	— तुम्हारे	आर्ति-	— दीनता,
वपुः	— स्वरूप का	ताप-	— दुःख (तथा
ये	— जो (भक्त)	विपदः	— विपदा वाले)
श्रद्धया	— श्रद्धा से	ते	— वे भक्त
ध्यायन्ति	— ध्यान करते हैं	सम्पदं	— (लौकिक तथा
चित्त-	— मन के		पारमार्थिक) सम्प-
अन्तर्	— बीच में		त्तियों को
नि+हत-	— पूर्णतया हटे हुए	बिभ्रति	— धारण करते हैं।

ये संस्मरन्ति तरलां सहसोल्लसन्तीं
त्वां ग्रन्थिपञ्चकभिदं तरुणार्कशोणाम्।
रागार्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं
कृत्स्नं जगद्दधति चेतसि तान्मृगाक्ष्यः ॥६॥

पदच्छेदः

ये संस्मरन्ति तरलां सहसा उल्लसन्तीं
त्वां ग्रन्थि पञ्चक भिदं तरुण अर्क शोणाम्।
राग अर्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं
कृत्स्नं जगत् दधति चेतसि तान् मृग अक्ष्यः ॥६॥

ये	— जो [भक्त]	उल्लसन्तीं	— विकसित रूप वाली,
तरलां	— चंचल रूप वाली	पंचक-	— पांच
	स्पंदात्मक [संकोच	ग्रंथि[1]	— गांठ (आवरण)
	विकासमय]	भिदं	— हटाने वाली
सहसा	— इच्छा मात्र से हो	तरुण-2	— छोटे (प्रातः काल

१. पांच ग्रंथियां-चैतन्य स्वरूप को छिपाने वाली पांच शक्तियां अर्थात् कला, विद्या, राग, काल और नियति

२. ज्ञान शक्ति रूप प्रातः काल का सूर्य अति उष्ण न होने के कारण सुखदायक।

	के)		विमर्श करते हैं
अर्क-	— सूर्य (जैसे)	मृगाक्ष्यः	— मृग की जैसी सुन्दर
शोणां	— रक्त वर्ण (वाली)		नेत्रों वाली (आनन्द
त्वां	— तुम्हें		दायक इच्छा से प्रा-
कृत्स्नं	— सारे		प्त करने योग्य
जगत्	— जगत को		सर्वज्ञता आदि दिव्य
बहल-रागिणि	— [राग तत्त्व से भरे		शक्तियां)
		तान्	— उन भक्तों को
राग अर्णवे	— [राग रूपी आनन्द सागर में	चेतसि	— अपने मन में
		दधति	— धारण करती हैं।
मज्जयन्ती	— डुबाते हुए [तुम्हारे स्वरूप का)		(उस भक्त पर मो-हित होकर उसके
संस्मरन्ति	— बार बार स्मरण से		वश हो जाती हैं)

लाक्षारसस्नपितङ्कजतन्तुतन्वी-
मऽन्तः स्मरत्यऽनुदिनं भवतीं भवानि ।
यस्तं स्मरप्रतिममऽप्रतिमस्वरूपा
नेत्रोत्पलैर्मृगदृशो भृशमऽर्चयन्ति ॥१०॥

पदच्छेदः

लाक्षारसस्नपित पङ्कज तन्तु तन्वीम्
अन्तः स्मरति अनुदिनं भवतीं भवानि !
यः तं स्मरप्रतिमं अप्रतिम स्वरूपाः
नेत्रउत्पलैः मृगदृशः भृशम् अर्चयन्ति ॥१०॥

भवानि !	— हे देवी !	लक्षारस-स्नपित-	— लाख के रस में धुले हुए लाल रंग के
यः	— जो भक्त		
भवतीं	— आपको		

पंकज	— कमलों के	अप्रतिम-	— उपमा रहित
तन्तुतन्वीं	— सूक्ष्मतार जैसे अति सूक्ष्म (स्वरूप का)	स्वरूपाः	— स्वरूप वाली
		मृगदृशः	— मृग जैसी नेत्रों वाली (सुन्दर दिव्य शक्तियां सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व, पूर्णत्व, व्यापकत्व, नित्यत्व)
अन्तः	— सुषुम्ना धाम में		
अनुदिनं	— प्रतिदिन (निरन्तर)		
स्मरति,	— स्मरण करता है		
स्मर-	— कामदेव के	नेत्र+उत्पलैः	(अपने) नेत्र कमलों से
प्रतिमम्	— समान (जैसे)	भृशम्	— अत्यधिकता से
तं	— उस भक्त को	अर्चयन्ति	— पूजती हैं ।

स्तुमस्त्वां वाचमऽव्यक्तां
हिमकुन्देन्दुरोचिषम् ।
कदम्बमालां विभ्राणा-
माऽऽपादतललम्बिनीम् ॥११॥

पदच्छेदः

स्तुमः त्वां वाचम् अव्यक्ता
हिम कुन्द इन्दु रोचिषम् ।
कदम्ब मालां बिभ्राणाम्
आपादतल लम्बिनीम् ॥११॥

त्वां	— तुझ	आपादतल-	चरणों के तले तक
हिम-[1]	बर्फ़,		
कुन्द-[2]	कुन्द पुष्प (और)	लम्बिनीम्	लटकती हुई
इन्दु-[3]	चन्द्रमा की जैसी	कदम्ब-	— कदंब पुष्पों की
रोचिषम्	तेज वाली (तथा)	मालां	— माला को

१. हिम—बर्फ़ का एक ही अर्थात् छेद रहित निर्मल तख्ता—पश्यन्ती बाणी ।
२. कुन्द पुष्प—संकुचित और एक दूसरे से भिन्न—मध्यमा बाणी ।
३. इन्दु-चन्द्रमा-बेद्य सशूह-वैखरी बाणी ।

विभ्राणाम्	— धारण करने वाली		(परा रूप) की
अव्यक्तां वाचम्	[अप्रकट वाणी	स्तुमः	— (हम) स्तुति करते हैं।

मूर्ध्नीन्दोः सितपङ्कजासनगतां प्रालेयपाण्डुत्विषं
वर्षन्तीमऽमृतं सरोरुहभुवो वक्त्रेऽपि रन्ध्रेऽपि च।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता चाऽतिप्रसन्नाऽपि च
त्वामेव स्मरतां स्मरारिदयिते ! वाक् सर्वतो वल्गति।१२।

पदच्छेदः

मूर्ध्नि इन्दोः सितपङ्कज आसनगतां प्रालेयपाण्डुत्विषं
वर्षन्तीम् अमृतं सरोरुहभुवः वक्त्रे अपि रन्ध्रे अपि च।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता च अति प्रसन्ना अपि च
त्वाम् एव स्मरतां स्मर अरि दयिते ! वाक् सर्वतो वल्गति ॥१२॥

स्मरारि-	— हे शंकर की		(तथा)
दयिते !	— शक्ति !	रन्ध्रेऽपिच	— ब्रह्मरन्ध्र पर भी
मूर्ध्नि	— सिर पर	सरोरुह-	— कमलों के (दोनों)
इन्दोः	— चन्द्रमा के जैसे आनन्द दायक तथा	भुवः	— पत्तों पर
		अमृतं	— अमृत
सित	— श्वेत (निर्मल) प्रकाशमान	वर्षन्तीं	— बरसाने वाली
		त्वाम् एव	— तुम्हें ही (तुम्हारे ऐसे स्वरूप का)
पंकज-	— कमल के		
आसनगतां	— आसन पर स्थित,	स्मरतां	— स्मरण करने वालों को
प्रालेय-	— बर्फ जैसी		
पाण्डु	— सफेद चमकीली	अच्छिन्ना	— छेद रहित (निरन्तर)
त्विषं	— दीप्ति वाली,	च	— तथा
वक्त्रेऽपि	— मूलाधार पर भी	मनोहरा	— मन को हरने वाली

च	— तथा	अपि	— भी (ऐसी)
ललिता अपि	— सुन्दर भी	वाक्	— वाणी
च	— और	सर्वतो	— सब ओर से
अति	— बहुत ही	वल्गति	— प्रकट होती है (वि-
प्रसन्ना	— निर्मल		कास में आती है।

ददातीष्टान्भोगान्क्षपयति रिपून्हन्ति विपदो
दहत्याधीन्व्याधीञ्छमयति सुखानि प्रतनुते।
हठादऽन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्टविरहं
सकृद्ध्याता देवी किमिव निरवद्यं न कुरुते ॥१३॥

पदच्छेद:

ददाति इष्टान् भोगान् क्षपयति रिपून् हन्ति विपदः
दहति आधीन् व्याधीन् शमयति सुखानि प्रतनुते :
हठात् अंतर्दुःखं दलयति पिनष्टि इष्टविरहम्
सकृत् ध्याता देवी किम् इव निःअवद्यं न कुरुते ॥१३॥

सकृत्	— एक ही बार निरन्तर प्रवाहरूप)	आधीन्	— मन के रोगों को
		दहति	— जलाती है
ध्याता	— ध्यान की हुई	व्याधीन्	— शरीर के रोगों को
देवी	— देवी	शमयति	— शांत करती हैं,
इष्टान्	— चाहे हुए	सुखानि	— सुखों को
भोगान्	— भोगों को	प्रतनुते	— विस्तारती है,
ददाति	— देती है,	अन्तः	— अन्तः करणों के
रिपून्	— शत्रुओं को	दुःखं	— दुखों को
क्षपयति	— नाश करती है,	हठात्	— जोर से
विपदः	— आपत्तियों कों	दलयति	— नष्ट करती है
हन्ति	— हटाती है,	इष्ट-	— प्यारों के

विरहं	— वियोग को		(जिसको कि देवी)
पिनष्टि	— पीसती है (प्यारों से मिलाप कराती है)	निरवद्यं	— दोष रहित प्रकार से
		न कुरुते	— (सिद्ध) नमीं करती है ?
किम्	— वह कौनसी बात है		

यस्त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जपत्यालोकते चिन्तय-
त्यन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौत्याश्रयत्यर्चति ।
यश्‍व त्र्यम्बकवल्लभे ! तव गुणानाऽऽकर्णयत्यादरा-
त्तस्य श्रीर्न गृहादपैति विजयस्तस्याग्रतो धावति ॥१४॥

पदच्छेद;

य: त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जपति आलोकते चिन्तयति
अन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौति आश्रयति अर्चति !
य: च त्र्यम्बकवल्लभे ! तव गुणान् आकर्णयति आदरात्
तस्य श्री:न गृहात् अपैति विजय: तस्य अग्रत: धावति ॥१४॥

हे त्र्यम्बक-	— इच्छा, ज्ञान, क्रिया रूप तीन नेत्र वाले शिव की	चिन्तयति	— चिन्तन करता है,
		अन्वेति	— पीछे चलता है,
		प्रतिपद्यते	— शरण में आता है,
वल्लभे !	— प्यारी ! (हे देवी) अभिन्न शक्ति !	कलयति	— विमर्श करता है,
		स्तौति	--- स्तुति करता है,
य:	— जो कोई	आश्रयति	— आसरा लेता है,
त्वां	— तुम्हें	अर्चति	— पूजता है
ध्यायति	— ध्यान करता है,	च	— और
वेत्ति	— जानता है,	य:	— जो
विन्दति	— प्राप्त करता है,	तव	— तुम्हारे
जपति	— जप करता है,	गुणान्	— गुणों को
आलोकते	— देखता है,	आदरात्	— आदर के साथ

आकर्णयति — (समाहित होकर) सुनता है,
तस्य — उस पुरुष के
गृहात् — घर से
श्रीः — भोग और मोक्ष रूप लक्ष्मी
न अपैति — [नहीं दूर जाती है (उस के वश में रहती है)
(तथा)

विजयः — विजयः
तस्य — उसके
अग्रतो — आगे आगे
धावति — दौडती है। वह सब दुःखों और आत्मा के आवरण रूप मोह को जीत कर आत्म लाभ प्राप्त करता है।

किं किं दुःखं दनुजदलिनि ! क्षीयते न स्मृतायां
का का कीर्तिः कुलकमलिनि ! ख्याप्यते न स्तुतायाम् ।
का का सिद्धिः सुरवरनुते ! प्राप्यते नार्चितायां
कं कं योगं त्वयि न चिनुते चित्तमालम्बितायाम् ॥१५॥

पदच्छेदः

किं किं दुःखं दनुज दलिनि ! क्षीयते न स्मृतायाम्
का का कीर्तिः कुलकमलिनि ! ख्याप्यते न स्तुतायाम् ।
का का सिद्धिः सुरवरनुते ! प्राप्यते न अर्चितायाम्
कं कं योगं त्वयि न चिनुते चित्तम् आलम्बितायाम् ॥१५॥

दनुजदलिनि ! हे काम, क्रोध, लोभ मोह, मद, अहंकार रूप राक्षसों की संहार कारिणी हे देवी !
किं किं — वह कौन २ सा
दुःखं — (ऐसा) दुख है

स्मृतायां — (जो तुम्हारे) स्मरण करने पर
न क्षीयते — नष्ट नहीं होता है ?
कुलकमलिनि ! हे विश्व रूपी कमल को खिलाने वाली (देवी) !

का का	— (वह) कौन २ सी	अर्चितायां	— (जो तुम्हारी) पूजा करने पर
कीर्तिः	— कीर्ति है	न प्राप्यते	— प्राप्त नहीं होती है !
स्तुतायाम्	— जो (तुम्हारी) स्तुति करने पर	कं कं	— (वह) कौन २ सा
न ख्याप्यते	— सिद्ध नहीं होती है ?	योगं	— योग है
सुरवरनुते !	— हे श्रेष्ट देवताओं से नमस्कार की गई (देवी) !	त्वयि	— (जो) तुम में
		चित्तम्	— मन
		आलम्बितायाम्	लगाने पर
का का	— (वह) कौन २ सी	न चिनुते	— जाना नहीं जाता है ?
सिद्धिः	— सिद्धि है		

ये देवि ! दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्था
ये कालि ! कालघनपाशनितान्त बद्धाः ।
ये चण्डि ! चण्डगुरुकल्मषसिन्धुमग्ना-
स्तान्पासि मोचयसि तारयसि स्मृतैव ॥१६॥

पदच्छेदः

ये देवि ! दुर्धर कृतान्त मुख अन्तरस्थाः
ये कालि ! काल घनपाशनितान्तबद्धाः ।
ये चण्डि ! चण्ड गुरु कल्मष सिन्धुमग्नाः
तान् पासि मोचयसि तारयसि स्मृता एवं ॥१६॥

देवि !	— हे (चमकने वाली स्वप्रकाश) देवी !	[1]कृतान्त-मुखान्तरस्था	— मृत्यु के मुख में पडे हुए हों, जन्म मरण से भय भीत हों,
ये	— जो		
दुर्धर-	— धारण करने के लिए कठिन (असह्या)	कालि !	— हे काल को जीतने

१. आणवमल

वाली !

ये — जो

[1]काल- — काल शक्ति की

घनपाश- — घनी फांसियों के

नितान्त- — ज़ोर से

बद्धाः — (जो) बांधे गये हों,

चण्डि ! — हे तेजोमय भयानक रूप धारण करने वाली (देवी) !

ये — (और) जो

[2]चण्ड — कठिन (और)

गुरुकल्मष- — भारी पापों के

सिन्धु- — समुद्र में

[मग्नाः — डूबे हों,

तान् — ऐसे सभी (आर्त भक्तों को)

स्मृता एव — (उनके द्वारा) स्मरण ही किये जाने पर (क्रमशः)

पासि — जन्म मरण से बचाती हो

मोचयसि — काल से छुटकारा दिलाती हो

तारयसि — पुण्य पाप के सागर से पार लगाती हो ।

लक्ष्मीवशीकरणचूर्णसहोदराणि
त्वत्पादपङ्कजरजांसि चिरं जयन्ति ।
यानि प्रणाममिलितानि नृणां ललाटे
लुम्पंति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ॥१७॥

पदच्छेदः

लक्ष्मी वशीकरणचूर्ण सह उदराणि
त्वत् पादपङ्कजरजांसि चिरं जयन्ति ।
यानि प्रणाममिलितानि नृणां ललाटे
लुम्पन्ति दैव लिखितानि दुर्अक्षराणि ॥१७॥

लक्ष्मी- — (भोग) लक्ष्मी को

वशीकरण- — वश करने के लिए

चूर्ण- — औषधि के

सहोदराणि — सगे भाई अर्थात् समान शक्ति रखने वाले

---

१. मायीयमल २. कार्ममल

त्वत्-	— तुम्हारे	मिलितानि	— लगे हुए
पादपंकज-	— चरणकमलों की	दैव-	— प्रारब्ध में
रजांसि	— धूलि के कण	लिखितानि	— लिखे हुए
चिरं	— अनन्त काल तक	दुर्-	— बुरे
जयन्ति	— जय शील रहते हैं	अक्षरानि	— अक्षरों को
यानि	— जो (धूलि के कण)	लुम्पन्ति	— मिटा देते हैं !
नृणां	— (प्रणाम करने वाले) भक्तों के		अर्थात् सभी आपत्तियों से छुटकारा देते हैं ।
ललाटे	— माथे पर		
प्रणाम-	— प्रणाम करने से		

रे मूढाः ! किमयं वृथैव तपसा कायः परिक्लिश्यते
यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः किमितरे रिक्तीक्रियन्ते गृहाः ।
भक्तिश्चेदऽविनाशिनी भगवतीपादद्वयी सेव्यता-
मुन्निद्राम्बुरुहातपत्रसुभगा लक्ष्मीः पुरो धावति ॥१८॥

पदच्छेदः

रे मूढाः ! किं अयं वृथा एव तपसा कायः परिक्लिष्यते ?
यज्ञैः वा बहुदक्षिणैः किं इतरे रिक्ती क्रियन्ते गृहाः ?
भक्तिः चेत् अविनाशिनी भगवती पादद्वयी सेव्यताम्
उन्निद्र अम्बुरुह आतपत्रसुभगा लक्ष्मीः पुरः धावति ॥१८॥

रे मूढाः !	— अरे मोह में डूबे हुए अज्ञानी मूर्ख संसारिक पुरुषो !	अयं	— इस (अपने)
		कायः	— शरीर को
		वृथा एव	— व्यर्थ ही
किं	— क्यों	परिक्लिष्यते	— कष्ट देते हो
तपसा	— [ज्ञान रहित] तपस्या [तप, जप, व्रत आदि अधम उपायों से	वा	— अथवा
		बहुदक्षिणैः	— बड़ी दक्षिणाओं से युक्त
	[तुम]	यज्ञैः	— यज्ञों से

इतरे	— कुछ पुरुष		रूप
गृहाः	— (अपने) घरों को	पादद्वयी	— दो चरणों की
रिक्ती	— खाली	सेव्यताम्	— सेवा कीजिये
(किं)	— क्यों	उन्निद्र-	— (तो) खिले हुए
क्रियन्ते	— कर देते हैं,	अम्बुरुह-	— कमल के
चेद्	— यदि (तुम में)	आतपत्र	— छत्र से
*(अविनाशिनी) अटल		सुभगा	— शोभायमान
भक्तिः	— भक्ति है (तो)	लक्ष्मीः	— लक्ष्मी
अविनाशिनी	— तीन काल में नित्य	पुरो	— तुम्हारे आगे २
भगवती	— देवी के ज्ञान क्रिया	धावति	— दौड़ेगी।

याचे न कंचन न कंचन वञ्चयामि
सेवे न कंचन निरस्तसमस्तदैन्यः
श्लक्ष्णं वसे मधुरमद्मि भजे वरस्त्री-
देवी हृदि स्फुरति मे कुलकामधेनुः ॥१९॥

पदच्छेदः

याचे न कंचन न कंचन वञ्चयामि
सेवे न कंचन निरस्तसमस्त दैन्यः।
श्लक्ष्णं वसे मधुरं अद्मि भजे वरस्त्रीः
देवी हृदि स्फुरति मे कुलकामधेनुः ॥१९॥

निरस्त-	— हटी हुई		निरपेक्ष (मैं भक्त)
समस्त-	— सभी	कंचन	— किसी से भी
दैन्यः	— दीनताओं वाला	न याचे	— कुछ नहीं मांगता हूं।

*अविनाशिनी विशेषण पद को भक्ति और भगवती दोनों के साथ प्रयुक्त किया जा सकता है। १. मैं स्वतन्त्र और परिपूर्ण हूं।

कंचन — किसी को भी
न वंचयामि — कपट से नहीं ठगता हूं[1],
कंचन — किसी की भी
न सेवे — सेवा नहीं करता हूं (मैं स्वतंत्र हूं)
श्लक्ष्णं — सुन्दर (बारीक)
वसे — वस्त्र धारण करता हूं[2] देहाभिमान रहित हूं और चिद्रूप हूं
मधुरम् — स्वादिष्ट
अश्नि — भोग भोगता हूं, आनंद से पूर्ण हूं
वरस्त्रीः — उत्तम चित् शक्ति का
भजे — विमर्श करता हूं, (क्योंकि)
कुलकामधेनुः — सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली-
देवी — तेजस्विनी देवी
मे — मेरे
हृदि — हृदय में
स्फुरति — विकसित है ।

शब्दब्रह् ममयि ! स्वच्छे देवि त्रिपुरसुन्दरि ! ।
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि ॥२०॥

पदच्छेदः

शब्दब्रह्ममयि ! स्वच्छे ! देवि ! त्रिपुरसुन्दरि ! ।
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि ! ॥२०॥

शब्दब्रह्ममये — अ से क्ष तक मातृका रूपिणी जीव और ब्रह्म का ऐक्य कराने वाली
स्वच्छे ! — हे निर्मल चित्स्वरूप
देवि ! — हे सृष्टि-स्थिति-संहार पिधान अनुग्रह रूप क्रीडा करने वाली !
त्रिपुरसुन्दरि ! हे तीनों शरीरों में व्यापिनी
परमेश्वरि ! — हे परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति !
यथाशक्ति — जैसी वैसी थोडी मेरी शक्ति के अनुसार की हुई मेरे
जपं — जप (और)
पूजां — पूजा को
गृहाण — स्वीकार कीजिये ।

---

२. मेरे अंतः करण शुद्ध हैं । २. मैं चित्स्वरूप हूं ।

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः ।
अवस्था शाम्भवी मेऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा ॥२१॥

पदच्छेदः

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः ।
अवस्था शाम्भवी मे अस्तु प्रसन्नः अस्तु गुरुः सदा ॥२१॥

सर्वे	-- सभी	अवस्था	— अवस्था
साधकाः	— मोक्षसिद्धि के अभि-लाषी	अस्तु	— रहे,
		गुरुः	— मेरे गुरुदेव
नन्दन्तु	— आनन्द प्राप्त करें,	सदा	— सदा व सर्वदा
विदूषकाः	— निन्दक	प्रसन्नः	— मुझ पर अनुग्रह करने वाले
विनश्यन्तु	— नष्ट हो जायें,[1]		
मे	— मुझे	अस्तु	— रहें ।
शाम्भवी	— शाम्भव (अभेदमय)		

दर्शनात्पापशमनी जपान्मृत्युविनाशिनी ।
पूजिता दुःखदौर्भाग्यहरा त्रिपुरसुन्दरी ॥२२॥

पदच्छेदः

दर्शनात् पापशमनी जपात् मृत्युविनाशिनी ।
पूजिता दुःख दौर्भाग्यहरा त्रिपुरसुन्दरी ॥२२॥

त्रिपुरसुन्दरी	— देवी त्रिपुरा	पूजिता	— पूजा की गई (देवी) (अर्थात् जब भक्त उसकी पूजा करते हैं)
दर्शनात	— दर्शन से		
पापशमनी	— पापों को नाश करती है,		
		दुःख	— दुख (और)
जवात	— जप से	दौर्भाग्य-	— दुर्भाग्यों को
मृत्युविनाशिनी	मृत्यु का नाश करने वाली है,	हरा	— हटाने वाली (बनती है ।)

१. उनकी पाप करने की प्रवृत्ति शुद्ध होकर वे भी दोष रहित हो जायें ।

नमामि यामिनीनाथलेखालङ्कृतकुन्तलाम् ।
भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम् ।।२३।।

पदच्छेदः

नमामि यामिनी नाथ लेखा अलङ्कृत कुन्तलाम् ।
भवानीं भवसन्ताप निर्वापण सुधानदीम् ।।२३।।

यामिनीनाथ-	चन्द्रमा की	संताप-	— दुखों को
लेखा-	— कला से	निर्वापण-	— हटाने के लिए
अलंकृत-	— शोभित	सुधानदीम्	— अमृत नदी रूप
कुन्तलाम्	— केशों वाली,	भवानीम्	— देवी को
भव-	— संसार के	नमामि	— मैं प्रणाम करता हूं ।

मन्त्रहीनंक्रियाहीनं विधिहीनं च यग्दतम् ।
त्वया तत्क्षम्यतां देवि ! कृपया परमेश्वरि ।।२४।।

पदच्छेदः

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यत् गतम् ।
त्वया तत् क्षम्यतां देवि ! कृपया परमेश्वरि ! ।।२४।।

मन्त्रहीनं	— मंत्र रहित,	देवि !	— हे देवी,
क्रियाहीनं	— क्रिया रहित	परमेश्वरि !	— परमेश्वर की शक्ति !
च	— और	त्वया	— आप
विधिहीनं	— विधिरहित	तत्	— उस सब कुछ के लिए
यद्	--- जो कुछ	कृपया	— कृपा (करके)
गतम्	— मुझ से हुआ	क्षम्यताम्	— क्षमा करें ।

इति श्री पञ्चस्तव्यां घटस्तवः तृतीयः ।।३।।



अथ पञ्चस्तव्यामऽम्बस्तवश्चतुर्थः ।

॥ॐ॥

यामाऽऽमनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीं
विद्येति यां श्रुतिरहस्यविदो वदन्ति ।
तामऽर्धपल्लवितशङ्कररूपमुद्रां
देवीमऽनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये ॥१॥

पदच्छेदः

याम् आमनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीम्
विद्या इति यां श्रुतिरहस्य विदः वदन्ति ।
तां अर्ध पल्लवित शङ्कररूप मुद्रां
देवीम् अनन्य शरणः शरणं प्रपद्ये ॥१॥

याम्	— जिसको	रहस्य-	— सार को
मुनयः	— ऋषि मुनि	विदः	— जानने वाले (ज्ञानी पुरुष)
पुराणीम्	— अनादिकाल से सिद्ध		
प्रकृतिम्	— प्रकृति (जगत् योनि)	विद्या	— शुद्ध विद्या के
आमनन्ति	— कहते हैं,	इति	— नाम से
याम्	— जिसको	वदन्ति	— पुकारते हैं,
श्रुति-	— वेदों और शास्त्रों के	ताम्	— उसी

अर्ध-[1]	— आधे स्वरूप के अर्पण करने से	अनन्य-	— (मैं भक्त)
पल्लवित-	— विकसित होकर	शरणः	— जिसका (देवी के विना) दूसरा कोई सहारा नहीं है
शंकररूप-	— शंकर के स्वरूप को		
मुद्रां	— मुद्रित करने वाली	शरणं	— शरण
देवीं	— देवी को	प्रपद्ये	— होता हूं ।

अम्ब ! स्तवेषु तव तावदऽकर्तृकाणि
कुण्ठीभवन्ति वचसामऽपि गुम्फनानि ।
डिम्बस्य मे स्तुतिरसावऽसमञ्जसापि
वात्सल्यनिघ्नहृदयां भवतीं धिनोति ॥२॥

पदच्छेदः

अम्ब ! स्तवेषु तव तावत् अकर्तृकाणि
कुण्ठीभवन्ति वचसाम् अपि गुम्फनानि ।
डिम्बस्य में स्तुतिः असौ असमञ्जसा अपि
वात्सल्य निघ्नहृदयां भवतीं धिनोति ॥२॥

अम्ब ।	-- हे माता !	अपि	— भी
तव	— तुम्हारी	अकर्तृकाणि	— जिनका (परमेश्वर के विना) कोई कर्ता नहीं है,
स्तवेषु	— स्तुति करने में		
तावत्	— तो		
वचसां	— वेदों की	कुण्ठी	— कुण्ठित
गुम्फनानि	— सुन्दर रचनायें (वाक्य)	भवन्ति	— हो जाती हैं, (तो भी)

१. जिसने अपना आधा स्वरूप शिव को अर्पण करके (उसे चैतन्यरूप बना कर) शक्तिमान बनाया है और उसके स्वरूप में अपनी शक्ति की मुद्रा स्थापित की है ।

मे	— मुझ		है
डिम्बस्य	— मूर्ख की	वात्सल्यनिघ्न-	स्नेह भरी
असौ	— यह	हृदयां	— हृदय वाली
स्तुतिः	— स्तुति	भवतीं	— आप (माता) को
असमंजसापि	— (यद्यपि) अयुक्त भी	धिनोति	— प्रसन्न करती है।

व्योमेति बिन्दुरिति नाद इतीन्दुलेखा-
रूपेति वाग्भवतनूरिति मातृकेति।
निःष्यन्दमानसुखबोधसुधास्वरूपा
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम् ॥३॥

पदच्छेद;

व्योम इति बिन्दुः इति नादः इति इन्दुलेखा-
रूपा इति वाक् भवतनूः इति मातृका इति।
निःष्यन्दमान सुखबोध सुधा स्वरूपा
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम् ॥३॥

व्योम इति	— चिदाकाश,	सुख-	— आनन्द, (और)
बिन्दुः इति	— ज्ञान,	बोध-	— ज्ञान रूप
नादः इति	— विज्ञान, विमर्श)	सुधा-	— अमृत के
इन्दुलेखा-रूपा इति	— चन्द्रमा की कला रूप,	स्वरूपा	— स्वरूप वाली (हे देवी ! आप)
वाक्-	— वाणियों के	भाग्यवतां	— सौभाग्य वाले
भवतनूः इति	— उत्पत्ति स्थान रूप	जनानां	— (भक्त) जनों के
मातृका इति	— माता रूप (और) अ से लेकर क्ष तक मातृका रूप	मनसि	— मन में
		विद्योतसे	— विकसित (प्रकट) होती हो।
निःष्यन्दमान-	निकलते हुए		

आविर्भवत्पुलकसन्ततिभिः शरीरै-
र्निःष्यन्दमानसलिलैर्नयनैश्व नित्यम् ।
वाग्भिश्च गद्गदपदाभिरुपासते ये
पादौ तवाम्ब ! हृदयेषु त एव धन्याः ।।४।।

पदच्छेदः

आविर्भवत् पुलकसन्ततिभिः शरीरैः
निःष्यन्दमान सलिलैः नयनैः च नित्यम् ।
वाग्भिः च गद्गदपदाभिः उपासते ये
पादौ तव अम्ब ! हृदयेषु ते एव धन्याः ।।४।।

अम्ब !	— हे माता !	ये	— जो (भक्तवर)
आविर्भवत्	— प्रकट बने हुए	तव	— तुम्हारे
पुलक-	— रोमांचों की	पादौ	— चरणों को
सन्ततिभिः	— पंक्तियों से युक्त	नित्यम्	— निरन्तर
शरीरैः	— शरीरों से,	हृदयेषु	— अपने हृदयों में
निःष्यन्दमान-	बहते हुए	उपासते	— पूजते हैं (मन में धारण करते हैं)
सलिलैः	— जल से युक्त (अश्रु धारा भरे)	त एव	— वे ही (भक्त)
नयनैः	— नेत्रों से,	धन्याः	— श्लाध्य हैं अर्थात् आप से एकता प्राप्त करने के अधिकारी बनते हैं ।
च	— और		
गद्गदपदाभिः	गद्गदपद शब्दों वाली (हिचकी बन्धे हुए)		
वाग्भिः	— वाणियों से		

वक्त्रं यदुद्यतमऽभिष्टुतये भवत्या-
स्तुभ्यं नमो यदपि देवि ! शिरः करोति ।

चेतश्च यत्त्वयि परायणमम्ब ! तानि
कस्यापि कैरपि भवन्ति तपोविशेषैः ।।५।।

पदच्छेदः

वक्त्रं यत् उद्यतम् अभिष्टुतये भवत्याः
तुभ्यम् नमः यत् अपि देवि ! शिरः करोति ।
चेतः च यत् त्वयि परायणम् अम्ब ! तानि ।
कस्य अपि कैः अपि भवन्ति तपः विशेषैः ।।५।।

देवि !	— हे देवी !	चेतः च	— और (ऐसा) मन
वक्त्रं	— (ऐसा) मुख	यत्	— जो
यत्	— जो	त्वयि	— आप में (आपके वि-मर्श में)
भवत्याः	— आपकी		
अभिष्टुतये	— बार बार स्तुति करने के लिए	परायणम्	— लीन हो,
		अम्ब !	— हे माता !
उद्यतम्	— उद्योग युक्त हो,	तानि	— यह (तीनों बातें)
शिरः	— (ऐसा) सिर	कस्यापि	— किसी ही विरले (भक्त) को
अपि	— भी		
यत्	— जो	कैरपि	— किन्ही
तुभ्यं	— आपको	तपो विशेषैः	— उत्तम तपों (के बल) से
नमः	— नमस्कार		
करोति	— करता हो,	भवन्ति	— (प्राप्त) होती हैं ।

मूलालवालकुहरादुदिता भवानि !
निर्भिद्य षट्सरसिजानि तडिल्लतेव ।
भूयोऽपि तत्र विशसि ध्रुवमण्डलेन्दु-
निःष्यन्दमानपरमामृततोयरूपा ।।६।।

पदच्छेदः

मूल आलवाल कुहरात् उदिता भवानि !
निर्भिद्य षट् सरसिजानि तडित् लता इव ।
भूयः अपि तत्र विशसि ध्रुवमण्डल इन्दु-
निःष्यन्दमान परम अमृत तोयरूपा ।।६।।

भवानि !	— हे देवी, (आप)	ध्रुवमंडलेन्दु-	निश्चल मण्डल वाले चन्द्रमा (अमा कला) से
मूलालवाल-कुहरात्	— मूलाधार के रन्ध्र से	निःष्यन्दमान-	प्रवाह रूप में निकलती हुई
उदिता	— उदय में आई हुई	परामृत-	— उत्कृष्ट चित् अमृत के
षट्	— छः	तोयरूपा	— जलरूप
सरसिजानि[1]	— कमलों को	तत्र	— उसी मूलाधार में
तडित् लता	— बिजली की कडक	विशसि	— प्रवेश करती हो ।
इव	— की तरह		
निर्भिद्य	— फाडकर		
भूयः अपि	— फिर मुडकर		

दग्धं यदा मदनमेकमऽनेकधा ते
मुग्धः कटाक्षविधिरङ्कुरयांचकार ।
धत्ते तदाप्रभृति देवि ! ललाटनेत्रं
सत्यं हियेव मुकलीकृतमिन्दुमौलिः ।।७।।

पदच्छेदः

---

१. मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक छः स्थान अर्थात् नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य तथा ब्रह्मरन्ध्र ।

दग्धं यदा मदनम् एकम् अनेकधा ते
मुग्धः कटाक्ष विधिः अंकुरयांचकार ।
धत्ते तदा प्रभृति देवि ! ललाटनेत्रम्
सत्यं ह्रिया इव मुकुली कृतम् इन्दुमौलिः ।।७।।

देवि ! — हे देवी !
यदा — जब
ते — तुम्हारी
मुग्धः -- मनोहर
कटाक्षविधिः — नेत्रों की दृष्टि
एकम् — अकेले
अनेकधा — नाना प्रकार से
दग्धं — जले हुए
मदनम् — कामदेव को
अंकुरयां — अंकुर-
चकार — निकालने लगी
अर्थात् उसे पुनः
जीवित करने लगी
तदा प्रभृति — तब से
इन्दुमौलिः — शंकर के
ललाट- — माथे के
नेत्रं — नेत्र को
सत्यं — सचमुच ही
ह्रिया — लज्जा के मारे
मुकली कृतम् (अर्धनिमीलित)
बन्द किये हुए
इव — जैसा
धत्ते — धारण करता है ।

अज्ञातसम्भवमनाकलितान्ववायं
भिक्षुं कपालिनमवाससमद्वितीयम् ।
पूर्वं परग्रहणमङ्गलतो भवत्याः
शम्भुं क एव बुबुधे गिरिराजकन्ये ।।८।।

पदच्छेदः

अज्ञातसम्भवम् अनाकलित अन्ववायं
भिक्षुं कपालिनम् अवाससम् अद्वितीयम् ।
पूर्वं करग्रहणमङ्गलतः भवत्याः
शम्भुं कः एव बुबुधे गिरिराज कन्ये ! ।।८।।

गिरिराजकन्ये !	हे पार्वती !		दूसरा नहीं,
अज्ञात् संभवम्	जिसके माता पिता ही विदित नहीं,	शम्भुं	— (ऐसे) शंकर को
		भवत्याः	— आपके साथ
अनाकलित-अन्ववायं	— [जिसका कुल ही किसी को मालूम नहीं,	करग्रहण-	— पाणिग्रहण (विवाह) रूप
		मंगलतः	— कल्याण से
भिक्षुं	— भिक्षा करने वाले,	पूर्व	— पहले
कपालिनं	— कपालधारी,	कः एव	— भला कौन
अवाससम्	— नंगे (वस्त्रहीन) (तथा)	बुबुधे	— जानता था ! अर्थात् कोई भी नहीं जानता था।
अद्वितीयम्	— जिसके जैसा कोई		

चर्माम्बरं च शवभस्मविलेपनं च
भिक्षाटनं च नटनं च परेतभूमौ।
वेतालसंहतिपरिग्रहता च शम्भोः
शोभां बिभर्ति गिरिजे ! तव साहचर्यात् ॥६॥

पदच्छेदः

चर्म अम्बरं च शवभस्म विलेपनं च
भिक्षा अटनं च नटनं च परेत भूमौ।
वेताल संहति परिग्रहता च शम्भोः
शोभां बिभर्ति गिरिजे तव साहचर्यात् ॥६॥

शम्भोः	— शिव का	विलेपनं च	— शरीर पर मलना,
चर्माम्बरं च	— मृगछाला इत्यादि वस्त्र पहनना,	भिक्षाटनम् च	और भिक्षा के लिये घूमना,
शवभस्म-	— मुर्दों का भस्म	परेत भूमौ	— प्रेतों की भूमि में

चेतश्च यत्त्वयि परायणमम्ब ! तानि
कस्यापि कैरपि भवन्ति तपोविशेषैः ।।५।।

पदच्छेदः

वक्त्रं यत् उद्यतम् अभिष्टुतये भवत्याः
तुभ्यम् नमः यत् अपि देवि ! शिरः करोति ।
चेतः च यत् त्वयि परायणम् अम्ब ! तानि ।
कस्य अपि कैः अपि भवन्ति तपः विशेषैः ।।५।।

देवि !	— हे देवी !	चेतः च	— और (ऐसा) मन
वक्त्रं	— (ऐसा) मुख	यत्	— जो
यत्	— जो	त्वयि	— आप में (आपके वि-मर्श में)
भवत्याः	— आपकी		
अभिष्टुतये	— बार बार स्तुति करने के लिए	परायणम्	— लीन हो,
		अम्ब !	— हे माता !
उद्यतम्	— उद्योग युक्त हो,	तानि	— यह (तीनों बातें)
शिरः	— (ऐसा) सिर	कस्यापि	— किसी ही विरले (भक्त) को
अपि	— भी		
यत्	— जो	कैरपि	— किन्ही
तुभ्यं	— आपको	तपो विशेषैः	— उत्तम तपों (के बल) से
नमः	— नमस्कार		
करोति	— करता हो,	भवन्ति	— (प्राप्त) होती हैं ।

मूलालवालकुहरादुदिता भवानि !
निर्भिद्य षट्सरसिजानि तडिल्लतेव ।
भूयोऽपि तत्र विशसि ध्रुवमण्डलेन्दु-
निःष्यन्दमानपरमामृततोयरूपा ।।६।।

पदच्छेदः

मूल आलवाल कुहरात् उदिता भवानि !
निर्भिद्य षट् सरसिजानि तडित् लता इव ।
भूयः अपि तत्र विशसि ध्रुवमण्डल इन्दु-
निःष्यन्दमान परम अमृत तोयरूपा ।।६।।

भवानि !	— हे देवी, (आप)	ध्रुवमंडलेन्दु-	निश्चल मण्डल वाले चन्द्रमा (अमा कला) से
मूलालवाल-कुहरात्	— [मूलाधार के रन्ध्र से		
उदिता	— उदय में आई हुई	निःष्यन्दमान-	प्रवाह रूप में निकलती हुई
षट्	— छः		
सरसिजानि[1]	— कमलों को	परामृत-	— उत्कृष्ट चित् अमृत के
तडित् लता	— बिजली की कडक		
इव	— की तरह	तोयरूपा	— जलरूप
निर्भिद्य	— फाडकर	तत्र	— उसी मूलाधार में
भूयः अपि	— फिर मुडकर	विशसि	— प्रवेश करती हो ।

दग्धं यदा मदनमेकमऽनेकधा ते
मुग्धः कटाक्षविधिरङ्कुरयांचकार ।
धत्ते तदाप्रभृति देवि ! ललाटनेत्रं
सत्यं ह्रियेव मुकलीकृतमिन्दुमौलिः ।।७।।

पदच्छेदः

---

१. मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक छः स्थान
अर्थात् नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य तथा ब्रह्मरन्ध्र ।

दग्धं यदा मदनम् एकम् अनेकधा ते
मुग्धः कटाक्ष विधिः अंकुरयांचकार ।
धत्ते तदा प्रभृति देवि ! ललाटनेत्रम्
सत्यं ह्लिया इव मुकुली कृतम् इन्दुमौलिः ।।७।।

देवि ! — हे देवी !
यदा — जब
ते — तुम्हारी
मुग्धः -- मनोहर
कटाक्षविधिः — नेत्रों की दृष्टि
एकम् — अकेले
अनेकधा — नाना प्रकार से
दग्धं — जले हुए
मदनम् — कामदेव को
अंकुरयां — अंकुरु-
चकार — निकालने लगी
अर्थात् उसे पुनः
जीवित करने लगी
तदा प्रभृति — तब से
इन्दुमौलिः — शंकर के
ललाट- — माथे के
नेत्रं — नेत्र को
सत्यं — सचमुच ही
ह्लिया — लज्जा के मारे
मुकली कृतम् (अर्धनिमीलित)
बन्द किये हुए
इव — जैसा
धत्ते — धारण करता है ।

अज्ञातसम्भवमनाकलितान्ववायं
भिक्षुं कपालिनमवाससमद्वितीयम् ।
पूर्वं परग्रहणमङ्गलतो भवत्याः
शम्भुं क एव बुबुधे गिरिराजकन्ये ।।८।।

पदच्छेदः

अज्ञातसम्भवम् अनाकलित अन्ववायं
भिक्षुं कपालिनम् अवाससम् अद्वितीयम् ।
पूर्वं करग्रहणमङ्गलतः भवत्याः
शम्भुं कः एव बुबुधे गिरिराज कन्ये ! ।।८।।

गिरिराजकन्ये !	हे पार्वती !		दूसरा नहीं,
अज्ञात् संभवम्	जिसके माता पिता ही विदित नहीं,	शम्भुं	— (ऐसे) शंकर को
		भवत्याः	— आपके साथ
अनाकलित-अन्ववायं	— [जिसका कुल ही किसी को मालूम नहीं,	करग्रहण-	— पाणिग्रहण (विवाह) रूप
		मंगलतः	— कल्याण से
भिक्षुं	— भिक्षा करने वाले,	पूर्वं	— पहले
कपालिनं	— कपालधारी,	कः एव	— भला कौन
अवाससम्	— नंगे (वस्त्रहीन) (तथा)	बुबुधे	— जानता था ! अर्थात् कोई भी नहीं जानता था।
अद्वितीयम्	— जिसके जैसा कोई		

चर्माम्बरं च शवभस्मविलेपनं च
भिक्षाटनं च नटनं च परेतभूमौ ।
वेतालसंहतिपरिग्रहता च शम्भोः
शोभां बिभर्ति गिरिजे ! तव साहचर्यात् ।।६।।

पदच्छेदः

चर्म अम्बरं च शवभस्म विलेपनं च
भिक्षा अटनं च नटनं च परेत भूमौ ।
वेताल संहति परिग्रहता च शम्भोः
शोभां बिर्भति गिरिजै तव साहचर्यात् ।।६।।

शम्भोः	— शिव का	विलेपनं च	— शरीर पर मलना,
चर्माम्बरं च	— मृगछाला इत्यादि वस्त्र पहनना,	भिक्षाटनम् च	और भिक्षा के लिये घूमना,
शवभस्म-	— मुर्दों का भस्म	परेत भूमौ	— प्रेतों की भूमि में

नटनं	— नाचना,	गिरिजे !	— हे पार्वति !
च	— तथा	तव	— तुम्हारे (उस शिव के)
वेतालसंहति-	— वेताल भैरव इत्यादि के समूह का	साहचर्यात्	— साथ चलने से
परिग्रहता	— कुटुम्ब रूप होना(यह उसकी विलक्षणता)	शोभां	— शोभा को
		बिभर्ति[1]	— धारण करता है ।

कल्पोपसंहरणकेलिषु पण्डितानि
चण्डानि खण्डपरशोरपि ताण्डवानि ।
आलोकनेन तव कौमलितानि मात-
र्लास्यात्मना परिणमन्ति जगद्विभूत्यै ।।१०।।

पदच्छेदः

कल्प उपसंहरण केलिषु पण्डितानि
चण्डानि खण्डपरशोः अपि ताण्डवानि ।
आलोकनेन तव कोमलितानि मातः !
लास्यात्मना परिणमन्ति जगत् विभूत्यै ।।१०।।

मातः !	— हे माता !		
कल्प-	— कल्प के	पण्डितानि	— निपुण (तथा)
उपसंहरण-	— संहार करने की	चण्डानि	— अति तीक्ष्ण
केलिषु	— क्रीडाओं में	ताण्डवानि	— ताण्डव नृत्य
खण्डपरशो	— कुल्हाडा जिसका	अपि	— भी
	आयुध है(ऐसे शंकर के)	तव	— तुम्हारी

१. शंकर का यह सब व्यवहार, अर्थात् नंगा रहना, भस्म मलना, भिक्षा मांगना इत्यादि जो सांसारिक दृष्टि से निन्दित है देवी के उसके साथ होने से उसके (शंकर के) प्रभाव को बढाता है ।

लास्यात्मना	— सृष्टिकारक नाचरूप	जगत्-	— जगत के
आलोकनेन-	— दृष्टि मात्र से	विभूत्यै	— ऐश्वर्य के लिए
कोमलितानि	कोमल बनकर	परिणमन्ति	— परिणत हो जाते हैं ।

जन्तोरपश्चिमतनो: सति कर्मसाम्ये
नि:शेषपाशपटलच्छिदुरा निमेषात् ।
कल्याणि ! दैशिककटाक्षसमाश्रयेण
कारुण्यतो भवसि शाम्भववेददीक्षा ॥११॥

पदच्छेद:

जन्तो अपश्चिमतनोः सति कर्मसाम्ये
नि:शेष पाशपटलछिदुरा निमेषात् ।
कल्याणि ! दैशिक कटाक्ष सम् आश्रयेण
कारुण्यतः भवसि शाम्भव वेददीक्षा ॥११॥

कल्याणि !	— हे कल्याणरूपिणी !	समाश्रयेण	— आश्रय लेने से
अपश्चिमतनोः	जीवन्मुक्त[1] बनने वाले	निमेषात्	— क्षणमात्र से
		नि:शेष-	— सभी
जन्तोः	— जीवधारी को	पाश-	— पाशों के
कर्मसाम्ये	— पुण्य और पाप कर्मों की समता	पटल-	— समूहों को
		च्छिदुरा	— काटने वाली
सति	— हो जाने पर	शाम्भव वेद-	शैव शास्त्रों की
कारुण्यतो	— दया से	दीक्षा	— रहस्य उपदेश करने वाली
दैशिक-	— सद्गुरु की		
कटाक्ष-	— अनुग्रह की दृष्टि का	भवसि	— (तुम) बनती हो ।

---

१. जो इस शरीर के पश्चात् कोई दूसरा शरीर धारण नहीं करता है ।

मुक्ताविभूषणवती नवविद्रुमाभा
यच्चेतसि स्फुरसि तारकितेव सन्ध्या ।
एक: स एव भुवनत्रयसुन्दरीणां
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीं विनापि ॥१२॥

पदच्छेद:

मुक्ता विभूषणवती नवविद्रुमआभा-
यत् चेतसि स्फुरसि तारकिता इव सन्ध्या ।
एकः स एव भुवनत्रय सुन्दरीणां
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीम् विना अपि ॥१२॥

मुक्ता-	— मोतियों के		कराती हो)
विभूषणवती	— भूषणों से सुशोभित,	स एकः इव	— वही एक (भक्त)
नवविद्रुम-	— नये रुद्राक्ष की	भुवनत्रय-	— तीनों भुवनों का (शासन करने वाली)
आभा	— दीप्ति वाली (आप)		
यत्	— जिस (भक्त) के		
चेतसि	— मन में	सुन्दरीणां	— उत्तम शक्तियों के
तारकिता	— तारों से भरी हुई	कन्दर्पतां	— कामदेवभाव को[1]
सन्ध्या	— सन्ध्या	पचशरीं	— पांच बाणों के (धारण किये)
इव	— जैसी		
स्फुरसि	— विकाश में आती हो (अपना साक्षात्कार	विनापि	— विना ही
		व्रजति	— आप्त होता है ।

१. जिस प्रकार कामदेव के आवेश से युवतियां मोहित हो जाती हैं, उसी प्रकार उत्कृष्ट शक्तियां भी उत्तम भक्त के वश में हो जाती हैं ।

ये भावयन्त्यमृतवाहिभिरंशुजालै-
राप्यायमानभुवनाममृतेश्वरीं त्वाम् ।
ते लङ्घयन्ति ननु मातरऽलङ्घनीयां
ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि कालकक्ष्याम् ॥१३॥

पदच्छेदः

ये भावयन्ति अमृत वाहिभिः अंशुजालैः
आप्यायमान भुवनाम् अमृत ईश्वरीम् त्वाम् ।
ते लङ्घयन्ति ननु मातः ! अलङ्घनीयाम्
ब्रह्मादिभिः सुरवरैः अपि कालकक्ष्याम् ॥१३॥

ये	— जो (भक्त)	ते	— वे (सभी)
त्वां	— तुझ	ब्रह्मादिभिः	— ब्रह्मा इत्यादि
अमृतवाहिभिः	अमृत बहाने वाले	सुरवरैः	— श्रेष्ठ देवताओं से
अंशुजालैः	— किरणों के समूह से	अपि	— भी
आप्यायमान भुवनाक	(तीनों) भुवनों का सींचन करने वाली	अलङ्घनीयां	— पार करने में अति कठिन
अमृतेश्वरीं	— अमृत की स्वामिनी की	काल-	— काल (भूत, वर्तमान भविष्य)
भावयन्ति	— भावना करते हैं, (एकाग्र चित से ध्यान करते हैं)	कक्ष्यां	— कलना को
		ननु	— निश्चय ही
		लङ्घयन्ति	— पार कर जाते हैं ।
मातः !	— हे मातः !		

यः स्फाटिकाक्षगुणपुस्तककुण्डिकाढ्यां
व्याख्यासमुद्यतकरां शरदिन्दुशुभ्राम् ।

पद्मासनां च हृदये भवतीमुपास्ते
मातः स विश्वकवितार्किकचक्रवर्ती ॥१४॥

पदच्छेदः

यः स्फाटिक अक्षगुण पुस्तक कुण्डिका आढ्यां
व्याख्या सम् उद्यत करां शरत् इन्दु शुभ्राम्
पद्म आसनां च हृदये भवतीम् उपास्ते
मातः ! स विश्व कवि तार्किक चक्रवर्ती ॥१४॥

मातः !	— हे माता !	शुभ्रां	— निर्मल तेज वाली
यः	— जो (भक्त)	च	— और
1 स्फाटिक-	— स्फटिकमणि की	पद्मासनां	— कमल के आसन पर
अक्षगुण	— अक्षमाला,	हृदये	— हृदय में
2 पुस्तक-	— पुस्तक,	भवतीं	— आपकी
3 कुण्डिका-	— कूडी (कमण्डल) से	उपास्ते	— उपासना करता है
आढ्यां	— शोभित (तथा)	स	— वह
व्याख्या-	— उपदेश करने के लिए	विश्व-	— सभी जगत के
		कवि-	— कवियों (और)
4 समुद्यत	— उठाये हुए	तार्किक-	— तर्क के जानने वालों में
करां	— हाथ वाली,		
शरद्-	— शरद ऋतु के	चक्रवर्ती	— सब से उत्तम बन जाता है।
इन्दु-	— चन्द्रमा (जैसी)		

बर्हावतंस युतबर्बरकेशपाशां
गुञ्जावलीकृतघनस्तनहारशोभाम् ।

श्यामां प्रवालवदनां सुकुमारहस्तां
त्वामेव नौमि शवरीं शवरस्य जायाम् ।।१५।।

पदच्छेद:

बर्हं अवतंस युत बर्बर केश पाशाम्
गुञ्जा अवली कृत घन स्तन हार शोभाम् ।
श्यामां प्रवालवदनां सुकुमार हस्ताम्
त्वां एवा नौमि शवरीं शवरस्य जायाम् ।।१५।।

बर्हं-	— मोर पंख के	शोभां	— शोभा वाली,
अवतंस-	— ताज से	श्यामां	— श्याम वर्ण
युत-	— युक्त	प्रवाल-	— मूंगे जैसे (लाल)
बर्बर-	— बर्बर (कश्मीरी बबर)	वदनां	— मुख वाली,
	जैसे कोमल और	सुकुमार	— कोमल[1]
	चमकदार	हस्तां	— हाथों वाली, (ऐसी)
केशपाशां	— बालों वाली,	त्वामेव	— तुझे ही
गुंजावली-	— गुंजाहारों से	शवरीं	— शवरी[2]
कृत-	— किये हुए	शवरस्य	— शंकर की
घनस्तन-	— घने स्तनों पर	जायां	— शक्ति को
हार-	— हीरों की	नौमि	— मैं शरण होता हूं ।

अर्धेन किं नवलताललितेन मुग्धे !
क्रीतं विभोः परुषमर्धमिदं त्वयेति ।

१. अथवा हाथों में कुमार अर्थात् कार्तिक स्वामि लिया है जिसने ।
२. शिकारिन के रूप में शिव की शक्ति ।

आलीजनस्य परिहासवचांसि मन्ये
मन्दस्मितेन तव देवि ! जडी भवन्ति ॥१६॥

पदच्छेद:

अर्धेन किं नवलता ललितेन मुग्धे !
क्रीतं विभोः परुषम् अर्ध इदं त्वया इति ।
आली जनस्य परिहास वचांसि मन्ये
मन्द स्मितेन तव देवि ! जडी भवन्ति ॥१६॥

मुग्धे !	— हे सुन्दरी ! पार्वती !	इति	— इस प्रकार के
किं त्वया	— क्यों तूने	आलीजनस्य	— सखियों के
नवलता-	— नई लता (जैसे कोमल और सुन्दर)	परिहास-	— हंसी के
		वचांसि	— वचन
ललितेन-	— (तथा) प्रेम से पाले हुए (सुन्दर)	देवि !	— हे देवी !
		तव	— आपकी
अर्धेन	— अपने आधे शरीर के बदले	मन्द-	— कोमल (मन को हरने वाली)
विभोः	— शिव का	स्मितेन	— मुस्कराहट से
इदं	— यह	मन्ये	— (मैं मानता)
परुषम्	— कठिन (खुरदुरा)	जडी	— जड
अर्ध	— आधा शरीर	भवन्ति	— बन जाते हैं[1] ।
क्रीतं	— मोल लिया ?		

ब्रह्माण्ड बुद्बुदकदम्बकसंकुलोऽयं
मायोदधिर्विविधदुःखतरङ्गमालः ।

---

१. अर्थात् देवी के अन्तर्मुख होने से ही सहेलियां (इन्द्रिय शक्तियां) जड (सत्ता हीन) हो जाती हैं ।

आश्चर्यमम्ब ! झटिति प्रलयं प्रयाति
त्वद्ध्यानसन्ततिमहावडवामुखाग्नौ ।।१७।।

पदच्छेद:

ब्रह्माण्ड बुद्बुद कदम्बक संकुलः अयम्
माया उदधिः विविध दुःख तरङ्ग मालः
आश्चर्यम् अम्ब ! झटिति प्रलयं प्रयाति
त्वत् ध्यान सन्तति महा वडवा मुख अग्नौ ।।१७।।

अम्ब !	— हे माता !	महा-	— बडे
अयं	— यह	वडवामुख- अग्नौ	— वाडव अग्नि में
ब्रह्माण्ड-	— अनेकों ब्रह्माण्डरूप	झटिति	— क्षणमात्र में ध्यान करते ही)
बुद्बुद	— बुलबलों के	प्रलयं	— लय भाव को
कदम्बक-	— अगणित समूहों से	प्रयाति	— प्राप्त होता है (अर्थात् माया सागर का संहार हो जाता है)
संकुलो	— भरा हुआ	आश्चर्यम्	— यह बडे आश्चर्य की बात है।
माया-	— माया रूपी		
उदधिः	— सागर		
विविध-	— नाना प्रकार के		
दुखतरंग- मालः	— दुख की तरंगों से भरा हुआ		
त्वत्	— तुम्हारे		
ध्यान- सन्तति-	— निरन्तर ध्यान रूपी		

दाक्षायणीति कुटिलेति गुहारणीति
कात्यायनीति कमलेति कलावतीति ।

एका सती भगवती परमार्थतोऽपि
संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकीव ॥१८॥

पदच्छेद

दाक्षायणी इति कुटिला इति गुहारणी इति
कात्यायनी इति कमला इति कलावती इति ।
एका सती भगवती परमार्थतः अपि
संदृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकी इव ॥१८॥

भगवती	— ऐश्वर्य शालिनी भगवती		
परमार्थतः	— सच्चे स्वरूप से		
एका	— एक ही (अद्वितीय)		
सती अपि	— होती हुई भी		
दाक्षायणी इति	दक्ष प्रजापति की बेटी,		
कुटिला इति	— टेढ़ा चलने वाली कुण्डलिनी रूप		
गुहारणी इति	हृदय रूपी गुफाओं में वास करने वाली, (चित् दीप्ति को प्रकाश करने से)		
कात्यायनी	— कात्यायन ऋषि की पुत्री,		
कमला इति	— लक्ष्मी रूप अथवा कमल रूप संकोच विकासमय (सृष्टि संहार करने वाली		
कलावती इति[1]	कलाओं युक्त,		
इति	— ऐसे		
ननु	— निश्चय रूप से		
नर्तकी इव	— नाचने वाली स्त्री की तरह		
बहुविधा	— अनेकों प्रकार से		
संदृश्यसे	— दीखती हो (अनेकों रूप धारण करती हो ।)		

आनन्दलक्षणमनाहतनाम्नि देशे
नादात्मना परिणतं तव रूपमीशे ।

१. चन्द्रमा की १६ कला, शिव से पृथिवी तक ३६ तत्त्व रूप कला, अकार से हकार तक वर्णमाला रूप ५० कला ।

प्रत्यङ्मुखेन मनसा परिचीयमानं
शंसन्ति नेत्रसलिलैः पुलकैश्च धन्याः ॥१९॥

पदच्छेदः

आनन्दलक्षणम् अनाहतनाम्नि देशे
नाद आत्मना परिणतं तव रूपम् ईशे !
प्रत्यक् मुखेन मनसा परिचीयमानं
शंसन्ति नेत्र सलिलैः पुलकैः च धन्याः ॥१९॥

ईशे !	— हे ऐश्वर्यस्वरूपिणी !	नादात्मना	— शब्दों के रूप से (अक्षरों का मूल रूप)
धन्याः	— श्लाध्य और उत्तम भक्त	परिणतं	— परिणाम में आया हुआ (तथा)
तव	— तुम्हारे		
आनन्द-	— आनन्द ही	प्रत्यङ्मुखेन	— सन्मुख रूप वाले
लक्षण	— लक्षण है जिसका (ऐसे तुम्हारे)	मनसा	— मन से
		परिचीयमान	— बढाया हुआ,
रूप	— रूप को	नेत्रसलिलैः	— आंसुओं की अश्रु धाराओं
अनाहत-	— अनाहत (मध्यमा वाक्)	च	— तथा
नाम्नि	— नाम वाले	पुलकैः	— रोम हर्षों द्वारा
देशे	— स्थान पर	शंसन्ति	— जतलाते हैं

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वम् ।
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा
निःसारमेव निखिलं त्वदृते यदि स्यात् ॥२०॥

पदच्छेद:

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिः त्वं
त्वं चेतना असि पुरुषे पवने बलं त्वं
त्वं स्वादुता असि सलिले शिखिन त्वं ऊष्मा
निःसारम् एव निखिलं त्वतं ऋते यदि स्यात् ।।२०।।

त्वम् — तुम
शशिनि — चन्द्रमा में
चन्द्रिका — चान्दनी (प्रकाश रूप हो),
त्वम् — तुम
तिग्मरुचौ — सूर्य में
रुचिः — दीप्ति (विमर्श रूप हो),
त्वम् — तुम
पुरुषे — पुरुष में
चेतना — बुद्धि
असि — हो,
त्वम् — तुम
पवने — वायु में
बलं — बल (हो),

त्वम् — तुम
सलिले — जल में
स्वादुता — रस (रूप)
असि — हो,
त्वम् — तुम
शिखिनि — अग्नि में
उष्मा — गर्मी (हो),
यदि — यदि
त्वदृते — (यह सब तत्त्व) तुम्हारी सत्ता बिना
स्यात् — हों,
निखिलं — (तो) यह सारा विश्व
निःसारमेव — सत्ता रहित ही है।

ज्योतींषि यद्दिवि चरन्तियदन्तरिक्षं
सूते पयांसि यदहिर्धरणीं च धत्ते ।
यद्वाति वायुरनलो यदुर्दाचिरास्ते
तत्सर्वमम्ब ! तव केवलमाज्ञयैव ।।२१।।

पदच्छेदः

ज्योतींषि यत् दिवि चरन्ति यत् अंतरिक्षं
सूते पयांसि यत् अहिः धरणीं च धत्ते ।
यत् वाति वायुः अनलः यत् उर्दाचिः आस्ते
तत् सर्वम् अम्ब ! तव केवलम् आज्ञया एव ॥२१॥

यत्	— जो (यह)	वायुः	— वायु
ज्योतींषि	— तारागण	वाति	— चलता है,
दिवि	— आकाश में	यत् च	— और जो
चरन्ति	— फिरते हैं,	अनलः	— अग्नि
यत्	— जो	उर्दाचिः	— ऊँची दीप्ति वाला
अन्तरिक्षं	— आकाश	आस्ते	— है
पयांसि	— जलों को	अम्ब !	— हे माता !
सूते	— उत्पन्न करता है,	तत्सर्वं	— वह सब
यत्	— जो	केवल	— केवल
अहिः	— शेषनाग	तव एव	— तुम्हारी ही
धरणीं	— पृथ्वी को	आज्ञया	— आज्ञा से (स्थिति प्राप्त किये हुए हैं ।)
धत्ते	— धारण करता है,		
यत्	— जो		

सङ्कोचमिच्छसि यदा गिरिजे ! तदानीं
वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरनामरूपा ।
यद्वा विकासमुपयासि यदा तदानीं
त्वन्नामरूपगणनाः सुकरीभवन्ति ॥२२॥

पदच्छेदः

सङ्कोचं इच्छसि यदा गिरिजे ! तदानीं
वाक्तर्कयोः त्वम् असि भूमिः अनामरूपा ।

यत् वा विकासम् उपयासि यदा तदानीम्
त्वत् नामरूपगणनाः सुकरी भवन्ति ।।२२।।

गिरिजे !	— हे पार्वती !	असि	— हो,
यदा	— जब	यद्वा	— या
त्वं	— तुम	यदा	— जब
संकोचं	— स्वरूप का संकोच	विकासं	— स्वरूप के विकास को
इच्छसि	— (ग्रहण करना) चाहती हो	उपयासि	— प्राप्त करती हो
तदानीं	— तब	तदानीं	— उस अवस्था में
वाक्-तर्कयोः	— [वाणी और तर्क (विचार) में	त्वत्-	— तुम्हारे
		नामरूप-	— नामों और रूपों की
अनामरूपा	— नामों और रूपों के रहित	गणनाः	— गिनती
		सुकरी	— आसान
भूमिः	— अवस्था	भवन्ति[1]	— हो जाती है ।

भोगाय देवि भवतीं कृतिनः प्रणम्य
भ्रूकिङ्करीकृतसरोजगृहासहस्राः ।
चिन्तामणिप्रचयकल्पितकेलिशैले
कल्पद्रुमोपवन एव चिरं रमन्ते ।।२३।।

पदच्छेदः

भोगाय देवि ! भवतीं कृतिनः प्रणम्य
भ्रूकिङ्करी कृतसरोजगृहा सहस्राः ।
चिन्तामणि प्रचय कल्पित केलिशैले
कल्पद्रुम उपवन एव चिरं रमन्ते ।।२३।।

---

१. सभी स्थूल या सूक्ष्म वेधों के नाम और रूप तुम्हारे ही नाम रूप हैं ।

देवि !	— हे देवी !	चिन्तामणि-	— चिन्तामणि रत्नों के
[1]भ्रू-	— भौओं की	प्रचय-	— समूहों से
किंकरीकृत-	दास बनी हुई	कल्पित-	— बनाये हुए
सरोजगृहासहस्र:	हजारों लक्ष्मियों वाले	केलि-	— क्रीडा रूपी
		शैले	— पर्वत पर
कृतिनः	— क्रियावान पुरुष	कल्पद्रुम-	— कल्प वृक्षों के
भोगाय	— भोग (सांसारिक तथा पारमार्थिक) प्राप्त करने के लिए	उपवने	— बागों में
		एव	— ही
		चिरं	— अनन्त काल (तक)
भवतीं	— आप को	रमन्ते	— ऐश्वर्य भोगते हैं। (क्रीडा करते हैं)
प्रणम्य	— प्रणाम करके		

हन्तुं त्वमेव भवसि त्वदधीनमीशे
संसारतापमखिलं दयया पशूनाम् ।
वैकर्तनीकिरणसंहतिरेव शक्ता
धर्मं निजं शमयितुं निजयैव वृष्टया ॥२४॥

पदच्छेदः

हन्तुं त्वम् एव भवसि त्वत् अधीनं ईशे !
संसार तापम् अखिलं दयया पशूनाम् ।
वैकर्तनी किरण संहतिः एव शक्ता
धर्म निजं शमयितुं निजया एव वृष्टया ॥२४॥

---

१. अर्थात् एक ही नहीं अनन्त लक्ष्मियां (भोग लक्ष्मी, मोक्ष लक्ष्मी, भक्ति लक्ष्मी इत्यादि) और ऐश्वर्य उनके वश में हो जाते हैं, यह सब लक्ष्मियां उस पुरुष के आंखों के इशारे पर नाचती हैं ।

ईशे ! — हे स्वतन्त्र इच्छा वाली स्वामिनी !
पशूनां — जन्म मरण में फंसे हुए जीवों के
अखिलं — सारे
संसारतापं — जन्म मरण से उत्पन्न हुए दुख को
त्वत् — (जो) तुम्हारे ही
अधीनं — अधीन है,
दयया — अनुग्रह करके
हन्तुं — नाश करने के लिए
त्वमेव — तुम ही
भवसि — समर्थ हो (जैसे)
वैकर्तनी- — सूर्य की (सावित्री नामक)
किरण- — किरणों का
संहतिरेव — समूह ही
निजं — स्वयं उत्पन्न की हुई
धर्म — गर्मी को
निजया एव — अपनी ही (शक्ति से उत्पन्न की हुई)
वृष्टचा — वर्षा से
शमयितुं — शांत करने के लिए
शक्ता — समर्थ है ।

शक्तिः शरीरमधिदैवतमन्तरात्मा
ज्ञानं क्रिया करणमासनजालमिच्छा ।
ऐश्वर्यमायतनमावरणानि च त्वं
किं तन्न यद्भवसि देवि शशाङ्कमौलेः ।।२५।।

पदच्छेदः

शक्तिः शरीरं अधिदैवतं अन्तर् आत्मा
ज्ञान क्रिया करणं आसन जालं इच्छा ।
ऐश्वर्य आयतनम् आवरणाणि च त्वं
किं तत् न यत् भवसि ? देवि ! शशाङ्कमौलेः ।।२५।।

शशाङ्क- — चन्द्रमा है
मौलेः — माथे पर जिसके (ऐसे शिव की)
देवि ! — क्रीडन शील शक्ति
शक्तिः — प्राणशक्ति,
शरीरं — स्थूल शरीर,

अधिदैवतम्	— शरीर के अधिष्ठित देव (अर्थात् दस इन्द्रियां),		ज्ञाताभाव,
		आयतनम्	— आश्रय
		च	— और
अन्तरात्मा	— अन्तः करण,	आवरणाणि	— स्वरूप के छिपाने वाले मल (यह सब कुछ)
ज्ञानं	— ज्ञान शक्ति,		
क्रिया	— क्रिया शक्तिः		
करणम्	— क्रियाओं का करना,	त्वम्	— तुम ही हो
आसन-	— आसन	तत् किं	— वह कौन सी वस्तु (भाव) है
जालम्	— समूह		
इच्छा	— इच्छा (स्वातंत्र्य) शक्ति	यत्	— जो
		न भवसि	— (तुम) नहीं बनती हो।
ऐश्वर्यम्	— सर्वकर्त्ताभाव सर्व-		

भूमौ निवृत्तिरुदिता पयसि प्रतिष्ठा
विद्याऽनले मरुति शान्तिरतीतशान्तिः।
व्योम्नीति याः किलकलाः कलयन्ति विश्वं
तासां विदूरतरमम्ब ! पदं त्वदीयम् ॥२६॥

पदच्छेदः

भूमौ निवृत्तिः उदिता पयसि प्रतिष्ठा
विद्या अनले मरुति शान्तिः अतीतशान्तिः
व्योम्नि इति याः किल कलाः कलयन्ति विश्वं
तासां विदूरतरम् अम्ब ! पदं त्वदीयम् ॥२६॥

भूमौ	— पृथिवी तत्त्व में	अनले	— अग्नि तत्त्व में
निवृत्तिः	— निवृत्ति कला,	विद्या	— विद्या कला,
पयसि	— जल तत्त्व में	मरुति	— वायु तत्त्व में
प्रतिष्ठा	— प्रतिष्ठा कला	शांतिः	— शांति कला,

व्योम्नि	— आकाश तत्त्व में	कलयन्ति	— प्रकट करती हैं।
अतीत शांतिः	शान्त्यतीत कला	अम्ब !	— हे माता !
उदिता	— उदय में आई हैं	त्वदीयं	— तुम्हारा चैतन्य स्वरूप)
इति	— इस प्रकार		
याः	— जो	पदं	— स्थान
कलाः	— कलायें	तासां	— इन सब कलाओं से भी
विश्वं	— (३६ तत्त्वमय) जगत को	विदूरतरम्	— बहुत ही ऊँचा है ।
किल	— निश्चय ही		

यावत्पदं पदसरोजयुगं त्वदीयं
नाङ्गीकरोति हृदयेषु जगच्छरण्ये ।
तावद्विकल्प जटिलाः कुटिलप्रकारा-
स्तर्कग्रहाः समयिनां प्रलयं न यान्ति ।।२७।।

पदच्छेदः

यावत् पदं पदसरोजयुगं त्वदीयं
न अङ्गीकरोति हृदयेषु जगत् शरण्ये !
तावत् विकल्प जटिलाः कुटिलप्रकाराः
तर्कग्रहाः समयिना प्रलयं न यान्ति ।।२७।।

जगत्शरण्ये !	जगच्छरण्ये, हे जगत की रक्षा करने वाली देवी !	त्वदीयम्	— तुम्हारे
		पदसरोज-	— चरण कमलों का
		युगं	— जोडा
यावत्	— जब तक	हृदयेषु	— हृदयों में

१. यह पांच कलायें ही जगत् की सृष्टि, स्थिति, संहार, विधान तथा अनुग्रह करती हैं ।

पदं	— स्थान	कुटिल-	— कुटिल
न अंगीकरोति	अंगीकार न करे[1]	प्रकाराः	— प्रकार वाले
तावत्	— तब तक	तर्क-	— वाद-विवाद रूपी
समयिनां	— भिन्न २ मतवादियों के	ग्रहाः	— हठ
		प्रलयं	— समाप्त
विकल्प-	— विकल्पों के कारण	न यांति	— नहीं होते हैं।
जटिलाः	— पेचदार बने हुए		

यद्देवयानपितृयानविहारमेके
कृत्वा मनः करणमण्डलसार्वभौमम् ।
याने निवेश्य तव कारणपञ्चकस्य
पर्वाणि पार्वति नयन्ति निजासनत्वम् ॥२८॥

पदच्छेदः

यत् देवयान पितृयान विहारम् एके
कृत्वा मनः करण मण्डल सार्वभौमम् ।
याने निवेश्य तव कारणपञ्चकस्य
पर्वाणि पार्वति ! नयन्ति निज आसनत्वम् ॥२८॥

पार्वति ?	— हे पार्वती	कृत्वा	— बनाकर
यत्	— जो	देवयान-	— देवताओं के मार्ग (प्राण)
एके	— कुछ उत्कृष्ट योगी		
मनः	— मन को	पितृयान-	— (और) पितृमार्ग (अपान)
करण-	— इन्द्रियों के		
मण्डल-	— समूह का	विहारम्	— फिरते हैं (अभ्यास करते हैं) (वह)
सार्वभौमम्	— चक्रवर्ती राजा		

१. अर्थात् जब तक मोह में फंसा हुआ जीव तुम्हारी शरण न ले ।

तव	— तुम्हारे	पर्वाणि	— शिखरों (पर)
याने	— (सुषुम्ना) मार्ग में	निज-	— अपना
धिवेश्य	— प्रवेश करके	आसनत्वम्	— आसन
कारण	— [पाच कारणों[1]	नयन्ति	— बनाते हैं ।[2]
पंचकस्य	— [के		

स्थूलासु मूर्तिषु महीप्रमुखासु मूर्तेः
कस्याश्चनापि तव वैभवमम्ब यस्याः ।
पत्या गिरामपि न शक्यत एव वक्तुं
सासि स्तुता किल मयेति तितिक्षितव्यम् ॥२६॥

पदच्छेदः

स्थूलासु मूर्तिषु मही प्रमुखासु मूर्तेः
कस्याःचन अपि तव वैभवम् अम्ब ! यस्याः ।
पत्या गिराम् अपि न शक्यते एव वक्तुं
सा असि स्तुता किल मया इति तितिक्षितव्यम् ॥२६॥

मही-	— पृथवी	यस्याः	— जिस
प्रमुखासु	— इत्यादि	तव	— तुम्हारे (अकथनीय स्वरूप का)
स्थूलासु	— स्थूल		
मूर्तिषु	— रूपों में से	वैभवम्	— प्रभाव (महिमा)
कस्याश्चन	— किसी एक	गिरां	— वाणियों का
मूर्तेः	— रूप का	पत्या	— स्वामी (ब्रह्मा जी)
अपि	— भी	अपि	— भी

---

१. जगत की सृष्टि इत्यादि करने के पांच कारण ब्रह्मा, विष्णु रुद्र, सदाशिव, ईश्वर ।

२. अर्थात् इन से भी ऊँची पदवी प्राप्त करते हैं ।

वक्तुं	— वर्णन करने के लिए	किल	— निश्चय ही
न शक्यते	— असमर्थ है	स्तुता	— [स्तुति की जा
सा	— वही (आप ऐसे उत्कृष्ट महिमा वाली)	असि	रही हो
		इति	— (मेरी) यह धृष्टता
		तितिक्षितव्यम्	कृपया आप सहन करले (अर्थात् मुझे क्षमा करें।)
अम्ब !	— हे माता !		
मया	— मुझ (जैसे तुच्छ) से		

कालाग्निकोटिरुचिमम्ब षडऽध्वशुद्धा-
वाल्पावनेषु भवतीममृतौघवृष्टिम्।
श्यामां घनस्तनतटां सकलीकृतौ च
ध्यायन्त एव जगतां गुरवो भवन्ति ॥३०॥

पदच्छेदः

काल अग्निकोटिरुचिम् अम्ब ! षट् अध्वशुद्धौ
आप्लावनेषु भवतीम अमृतओघ वृष्टिम्।
श्यामां घनस्तनतटां सकली कृतौ च
ध्यायन्तः एव जगतां गुरवः भवन्ति ॥३०॥

अम्ब !	— हे माता !	रुचिम्	— दीप्ति (तेज) वाली,
षडध्व-	— छः मार्गों को[1]	आप्लावनेषु	— इन भुवनों को सींचन (सृष्टि) करने में
शुद्धौ	— शुद्ध करने में[2]		
भवतीं	— आपको	अमृततौघ-	— अमृत से भरी हुई
कालाग्नि- कोटि-	— [करोड़ों कालाग्नि रुद्रों जैसी	वृष्टि	— वर्षारूप,
		च	— और

१. वर्ण, पद, मन्त्र, कला, तत्त्व, भुवन।

२. अभेद रूप बनाने में।

सकली-कृतौ	— इनको सम्पूर्ण बनाने (स्थिति करने) में	ध्यायन्त एव	— एकाग्रचित से ध्यान करते हुए ही (क्षण-मात्र में)
श्यामां	— श्याम वर्ण	जगतां	— सभी जगतों के
घनस्तनतटां	— भारी स्तनों से (माता के रूप में दूध देती हुई आपको भक्त)	गुरवो	— गुरु[1]
		भवन्ति	— बन जाते हैं।

विद्यां परां कतिचिदम्बरमम्ब केचि-
दानन्दमेव कतिचित्कतिचिच्च मायाम्।
त्वां विश्वमाहुरपरे वयमामनाम
साक्षादपारकरुणां गुरुमूर्तिमेव ॥३१॥

पदच्छेदः

विद्यां परां कतिचित् अम्बरम् अम्ब ! केचित्
आनन्दम् एव कतिचित् कतिचित् च मायाम्।
त्वां विश्वम् आहुः अपरे वयम् आमनाम
साक्षात् अपार करुणां गुरुमूर्तिम् एव ॥३१॥

अम्ब !	— हे माता !		रूप,
त्वां	— तुझको	केचित्	— कुछ
कतिचित्	— कुछ भक्त	अम्बरम्[3]	— आकाश रूप (चि-दाकाश),
परां विद्यां[2]	— परा (उत्कृष्ट) ज्ञान		

१. उत्तम माननीय सृष्टि आदि करने में समर्थ।

२. उपनिषद् (साविद्यायां विमुक्तये)

३. बौद्ध दर्शन, (त्रिक्षणवृत्तिज्ञानस्य हेतुः)

कतिचित् — कुछ
आनन्दमेव[1] ... (केवल) आनन्दरूप ही
च — और
कतिचित् — कुछ
मायाम्[2] — (भेद उत्पन्न करने वाली माया रूप,
अपरे — इन से भिन्न कुछ लोग
त्वां — तुझको
विश्वं[3] — जगत रूप ही
आहुः — करते हैं
वयम्[4] — (परन्तु) हम (इन से भिन्न भक्त) (आपको)
साक्षात् — प्रत्यक्ष
अपार — पाररहित
करुणां — अनुग्रहरूप
गुरुमूर्त्तिमेव — सद्गुरु का स्वरूप ही
आमनाम — कहते हैं ।

कुवलयदलनीलं बर्बरस्निग्धकेशं
पृथुतरकुचभाराक्रान्तकान्तावलग्नम् ।
किमिह बहुभिरुक्तैस्त्वत्स्वरूपं परं नः
सकलभुवनमातः सन्ततं सन्निधत्ताम् ॥३२॥

पदच्छेदः

कुवलयदलनीलं बर्बर स्निग्धकेशं
पृथुतरकुचभार आक्रान्त अवलग्नम् ।
किम् इह बहुभिः उक्तैः त्वत् स्वरूपं परं नः
सकल भुवन मातः ! सन्ततं सन्निधत्ताम् ॥३२॥

---

१. वेदान्त दर्शन, (आनन्दात् इमानि भूतानि जायन्तेः)

२. शंकराचार्य वेदान्त (जगत माया)

३. चार्वाक (स्थूलाद् भिन्नं नहि किंचिदस्ति)

४. शाक्त मत

सकल- — हे सभी
भुवन. — भुवनों की
मातः ! — माता !
इह — यहां
बहुभिः — अधिक
उक्तैः — कहने से
किं — क्या (लाभ है ?) केवल इतनी प्रार्थना है कि
कुवलयदल- — नीली कुईं के पुष्पों जैसा
नीलं — श्याम वर्ण,
बर्बर-[1] — बर्बर (जैसे)

स्निग्धकेश ... चिकने चमकीले बालों वाला,
पृथुतर- — मोटे
कुचभार- — स्तनों के भार से
आक्रान्त- — घेरे हुए
कान्त- — सुन्दर
अवलग्नम् — कमर वाला
त्वत्- — तुम्हारा
परं — उत्कृष्ट
स्वरूपं स्वरूप
नः — हमें
सन्ततं — नित्य
सन्निधत्ताम्— इकट रहे ।

इति श्री पञ्चस्तव्यां चतुर्थोऽम्बस्तवः ॥



१. एक चिकनी चमकेली लता जिसे कश्मीरी में बबर कहते हैं ।



अथ सकलजननीस्तवः पञ्चमः ।

॥ ॐ ॥

अजानन्तो यान्ति क्षयमवशमन्योन्यकलहै-
रमी मायाग्रन्थौ तव परिलुठन्तः समयिनः ।
जगन्मातर्जन्मज्वरभयतमः कौमुदि ! वयं
नमस्ते कुर्वाणाः शरणमुपयामो भगवतीम् ॥१॥

पदच्छेदः

अजानन्तः यान्ति क्षयम् अवशम् अन्योन्य कलहैः
अमी माया ग्रन्थौ तव परिलुठन्तः समयिनः ।
जगत् मातः ! जन्मज्वरभयतमःकौमुदि ! वयं
नमः ते कुर्वाणाः शरणम् उपयामः भगवतीम् ॥१॥

[1]जगन्मातः !	— हे जगतों को उत्पन्न करने वाली मां !		के लिए
जन्म-	विभिन्न योनियों के जन्म	कौमुदि	चान्दनी अर्थात् इन्हें दूर करने में समर्थ शील
ज्वर-	रोग इत्यादि	अमी समयिनः	यह सभी भिन्न २ मतवादी
भय-	मानसिक एवं — शारीरिक भय	[2]अजानन्तः	— तुम्हारे सच्चे स्वरूप को न जानते हुए
तमः-	अन्धकार (जैसे)		

अन्योन्य-	— एक दूसरे के साथ		चक्र में फंसते हैं)
कलहैः	— तर्क वितर्क रूप झग-डा करने के कारण	वयं	— हम शरणागत भक्त)
		ते भगवतीम्	— तुझ ऐश्वर्यशालिनी भगवती को[4]
तव	— तुम्हारी		
मायाग्रन्थौ	— माया रूपी गांठ में (फंदे में)	नमः	— नमस्कार
		कुर्वाणाः	— करते हुए (देहाभिमान को तुझ में अर्पण करते हुए)
परिलुठन्तः	— गिरते फंसते हुए[3]		
अवशम्	— बेबस (परतन्त्र) होकर		
		शरणं	— शरण में
क्षयंयान्ति	— नाश को प्राप्त होते हैं (जन्ममरण रूपी	उपयामः	— आते हैं।

वचस्तर्कागम्यस्वरसपरमानन्दविभव-
प्रबोधाकाराय द्युतितुलितनीलोत्पलरुचे।
शिवस्याराध्याय स्तनभरविनम्राय सततं
नमो यस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे ।।२।।

पदच्छेदः

वचः तर्क अगम्य स्वरस मरम-आनन्द विभव-
प्रबोध आकाराय द्युति तुलित नील उत्पल रुचे !
शिवस्य आराध्याय स्तन भर विनम्राय सततं
नमः यस्मै कस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे ।।२।।

रुचे !	— दीप्ति वाली (हे देवी !)	नीलोत्पल	— नीले रंग के कमल के
		द्युति	— प्रकाश के
वचः-	— वाणी (और)	तुलित	— समान
तर्क-	— विचार से	स्वरस-	— अपने ही (चित्) रस से
अगम्य-	— न जानने योग्य		

परमानंदविभव — परमानंद रूप ऐश्वर्य को
प्रबोधाकाराय — चैतन्यरूप से (तुझ देवी को)
शिवस्य — शिव से भी
आराध्याय — आराधना करने योग्य (तुझ देवी को)
स्तनभरविनम्राय भारी वक्षः स्थल (स्तनों ज्ञान और क्रिया) के कारण झुकी हुई देवी को (जगत की सृष्टि करने के लिए उद्योग में आई हुई)
यस्मैकस्मैचन — किसी अलौकिक (मन और वाणी से अगोचर)
मुग्धाय — सुन्दर (आनन्द रूप)
महसे — तेज को (चित् रूप को)
सततं — निरन्तर
नमो भवतु — नमस्कार हो।

लुठद्गुञ्जाहारस्तनभरनमन्मध्यलतिका-
मुदञ्चर्माम्भः कणगुणितनीलोत्पलरुचम् ।
शिवं पार्थत्राणप्रवणमृगयाकारगुणितं
शिवामन्वग्यान्तीं शवरमहमन्वेमि शवरीम् ।।३।।

पदच्छेदः

लुठत गुञ्जाहार स्तनभर नमन् मध्यलतिकाम्
उदञ्चत् धर्माम्भः कण गुणित नीलोत्पलरुचम् ।
शिवं पार्थत्राण प्रवण मृगया आकार गुणितं
शिवां अन्वक्यान्तीं शवरं अहं अन्वेमि शवरीम् ।।३।।

उदञ्चत्- — निकलते हुए
घर्माम्भः- — पसीने के
कण- — बिन्दु (कतरों) से
गुणित- — समान बने हुए
नीलोत्पलरुचम् कमल की शोभा-युक्त (मुख वाले शिव के)
पार्थत्राण- — अर्जुन की रक्षा करने में
प्रवण- — निपुण

मृगयाकार-	— शिकारी के वेश से		बीच में
गुणितं	— शोभित	नमन्-	— लटकते हुए
शवरं शिवं	— शिकारी रूप शिव के	मध्यलतिकां	— हार के बीच वाले आभूषण युक्त
अन्वक् यान्तीं	पीछे पीछे चलती हुई	शवरीं	— शिकारिन रूप धारण किई हुई
लुठत्-	— लटकते हुए (स्पन्द-मान्)	शिवां	— शिव की शक्ति (पार्वती) को
गुञ्जाहार-	— गुंजा फलों (रत्ति-यों) के	अहं	— मैं
		अन्वेमि	— बार बार प्रणाम करता हूं ।
स्तन भर-	— भारी वक्षःस्थलों के		

मिथः केशाकेशिप्रधननिधनास्तर्कघटना
बहुश्रद्धाभक्तिप्रणयविषयाश्चवाप्तविधयः ।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव गिरिसुते ! देहि शरणं
निरालम्बं चेतः परिलुठति पारिप्लवमिदं ॥४॥

पदच्छेदः

मिथः केशाकेशिप्रधननिधनाः तर्कघटना
बहुश्रद्धाभक्तिप्रणयविषयाः च आप्तविधयः ।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव गिरिसुते ! देहि शरणं
निरालम्ब चेतः परिलुठति पारिप्लवम् इदम् ॥४॥

तर्कघटना	— वादविवाद करने वाले (भिन्न भिन्न मतवादी)	केशाकेशि	— बालों को पकडकर (अपने अपने मतों को सिद्ध करने के लिए
मिथः	— आपस में एक दूसरे के	प्रधन	— लडकर

निधनाः — मर मिटते हैं
(परम्) — (परन्तु)
[आप्त — परमार्थ को
विधयः च — जानने वालों की विधियां (व्यवहार)
बहुश्रद्धाभक्ति — अत्यन्त विश्वास प्रेम और
प्रणयविषयाः नम्रता से पूर्ण (होती है)
गिरिसुते — (इस लिए)हे पार्वती
प्रसीद — हम पर प्रसन्न होकर
प्रत्यक्षीभव — प्रत्यक्ष रूप में दर्शन दो
देहि शरणं — हमें अपनी शरण में ले लो
(यतः) — (क्योंकि)
इदं चेतः — यह मन
निरालम्बं — आश्रयहीन (मत-मतान्तरों पर विश्वास न रहने के कारण)
पारिप्लवं — उपद्रव में
परिलुठति — डूब रहा है।

शुनां वा वह्नेर्वा खगपरिषदो वा यदशनं
कदा केन क्वेति क्वचिदपि न कश्चित्कलयति ।
अमुष्मिन्विश्वासं विजहिहि ममाह्लाय वपुषि
प्रपद्येथाश्चेतः सकलजननीमेव शरणम् ।।५।।

पदच्छेदः

शुनां व वह्नेः वा खगपरिषदः वा यत् अशनं
कदा केन क्व इति क्वचित् अपि न कश्चित् कलयति ।
अमुष्मिन् विश्वासं विजहि हि मत अह्लाय वपुषि
प्रपद्येथाः चेतः सकलजननीम् एव शरणम् ।।५।।

चेतः ! — हे मन !
यत् — जो यह (शरीर)
शुनां वा — या तो कुत्तों का
वह्नेः वा — या तो अग्नि का (जलाये जाने से)
खगपरिषदो वा या तो पक्षियों के समूह का
अशनं — भोजन बनता है
कदा — किस समय पर,
केन — किस कारण से,

क्व	— किस स्थान पर,	मम	— ममता का (ममेदं)
इति	— इस बात को	विश्वासं	— विश्वास (अभिमान)
कश्चित्	— कोई भी पुरुष	अह्नाय	— तुरन्त ही
क्वचिदपि	— कहीं भी	विजहिहि	— छोड दे
न कलयति	— (विचार नहीं करता है) नहीं जानता है	सकलजननीम् एव	सबों की माता (देवी) की ही
अमुष्मिन्	— इस	शरणं	— जो बचाने वाली है
वपुषि	— शरीर पर	प्रपद्येथाः	— शरण लो ।

अनाद्यन्ताभेदप्रणयरसिकापि प्रणयिनी
शिवस्यासीर्यत्त्वं परिणयविधौ देवि गृहिणी ।
सवित्री भूतानामपि यदुदभूः शैलतनया
तदेतत्संसारप्रणयनमहानाटकसुखम् ॥६॥

पदच्छेदः

अनाद्यन्ता भेदप्रणयरसिका अपि प्रणयिनी
शिवस्य आसीः यत् त्व परिणयविधौ देवि ! गृहिणी
सवित्री भूतानाम् अपि यत् उदभूः शैलतनया
तत् एतत् संसार प्रणयनमहानाटक सुखम् ॥६॥

देवि !	— हे देवी !	शिवस्य	— शिव की
अनाद्यन्ता-	— आदि और अंत रहित	गृहिणी	— पत्नी
भेदप्रणय-	— भेद के प्रेम का	आसीः	— बन गई
रसिकापि	— स्वाद करने वाली होकर भी	यत्	— (और) जो
		भूतानां	— जीवों की
प्रणयिनी	— प्रेम से भरी	सवित्री	— उत्पन्न करने वाली
यत्	— जो	अपि	— (होते हुए) भी
त्वम्	— तू	शैलराज-	— हिमालय की
परिणयविधौ	विवाह की विधि में	तनया	— पुत्री (बन कर)

उदभूः	— उत्पन्न हुई	प्रणयेन	— प्रेम से पूर्ण
तदेतत्	— वही यह सब	महा नाटक-	— बडे नाटक का
संसार	— संसार के	सुखम्	— सुख है।

ब्रवन्त्येके तत्त्व भगवति ! सदन्ये विदुरस-
त्परे मातः प्राहुस्तव सदसदन्ये सुकवयः।
परे नैतत्सर्वं समभिदधते देवि ! सुधिय-
स्तदेतत्त्वन्मायाविलसितमशेषं ननु शिवे ! ।।७।।

पदच्छेदः

ब्रुवन्ति एके तत्त्वं भगवति ! सत् अन्ये विदुःअसत्
परे मातः ! प्राहुः तव सत् असत् अन्ये सुकवयः।
परे न एतत् सर्व समभिदधते देवि ! सुधियः
तत् एतत् त्वत् माया विलसितं अशेषं ननु शिवे ।।७।।

भगवति !	— हे ऐश्वर्यव शालिनी देवी !	सदसत्	— (तुम्हारे स्वरूप को) सत् तथा असत् दोनों ही (भावाभाव)
एके	— कुछ लोग		
तव	— तुम्हारे	प्राहुः	— कहते हैं,
तत्त्वं	— स्वरूप को	मातः !	— हे माता !
सत्	— सत् रूप (भाव)	परे	— इन से भी परे (कुछ योगी)
ब्रुंवन्ति	— कहते हैं,		
अन्ये	— इन से भिन्न कुछ और लोग	सुधियः	— बुद्धिमान
		नैतत्सर्वं	— इन सत्ः असत् और सदसत् तीनों में से कुछ भी नहीं
असत्	— असत्		
विदुः	— जानते हैं,		
अन्ये परे	— इन से भी परे (कुछ)	समभिदधते	— कहते हैं,
सुकवयः	— सर्वज्ञ जन	देवि ! शिवे !	— हे देवी, हे शिव की

	शक्ति !	त्वत-	— तुम्हारी
तत्	— इसलिए	माया-	— मायाशक्ति का
एतत् अशेषं	— यह सब कुछ	विलसितम्	— विकास है ।
ननु	— निश्चय ही		

तडित्कोटिज्योतिर्द्युतिदलितषड्ग्रन्थिगहनं
प्रविष्टं स्वाधारं पुनरपि सुधावृष्टिवपुषा ।
किमप्यष्टात्रिंशत्किरणसकलीभूतमनिशं
भजे धाम श्यामं कुचभरनतं बर्बरकचम् ॥८॥

पदच्छेदः

तडितत् कोटिज्योतिः द्युतिदलितषट्ग्रन्थि गहनं
प्रविष्टं स्वाधार पुनः अपि सुधावृष्टि वपुषा ।
किम् अपि अष्टात्रिंशत् किरण सकली भूतम् अनिशं
भजे धाम श्यामं कुचभरनतं बर्बर कचम् ॥८॥

तडित्कोटि-	— करोडों बिजलियों के	वपुषा	— स्वरूप से
ज्योति-	— प्रकाश की	स्वाधारं	— अपने आधार में
द्युति-	— दीप्तियों से	प्रविष्टं	— प्रवेश किये हुए
दलित-	— काटी हुई	किमपि	— किसी अलौकिक,
षड्ग्रंथिगहनं	— छः ग्रंथि रूप जंगल (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहङ्कार) वाले,	अष्टात्रिंशत-[1]	अठतीस
		किरण-	— किरणों से
		सकलीभूतं	— परिपूर्ण बने हुए
		श्याम	— श्याम वर्ण
पुनः अपि	— फिर भी	धाम	— स्वरूप [देवी] को
सुधावृष्टि	— चित् अमृत वर्षा रूप	कुचभरनतं	— स्तनों के बोझ से

१. ३८ किरणः सूर्य १२ कला, चन्द्रमा १६ कला, अग्नि १० कला ।

	झुकी हुई (ज्ञान		वाली को
	क्रिया)	अनिशं	— बारबार निरन्तर)
वरवर कचम्	— (कश्मीरी बबर	भजे	— (मैं) नमस्कार करता
	जैसे चमकीले बालों		हूं।

चतुष्पत्रान्तः षड्दलभगपुटान्तस्त्रिवलय-
स्फुरद्विद्युद्वह्नि द्युमणिनियुताभद्युतियुते।
षडश्रंभित्त्वादौ दशदलमथ द्वादशदलं
कलाश्रं च द्वयश्रं गतवति! नमस्ते गिरिसुते!।।६।।

पदच्छेदः

चतुष्पत्रअन्तः षड्दलभगपुटअन्तः त्रिवलय-
स्फुरत् विद्युत वह्निद्युमणि नियुताभद्युतियुते
षट् अश्रं भित्वा आदौ दशदल अथ द्वादशदलं
कला अश्रं च द्विअश्रं गतवति! नमस्ते गिरिसुते!।।६।।

चतुष्पत्रान्तः	— चार पत्ते वाले कमल	द्युतियुते!	— तेजवाली!
	(मूलाधार) के बीच	आदौ	— पहले
	में	षडश्रं	— षड्दलकमल को
षड्दल-	— छः पत्ते रूप		(स्वाधिष्टान)
भगपुटान्तः	— दो तिकोणों के भीतर	भित्त्वा	— फाड कर
	(इच्छा-ज्ञान-क्रिया	अथ	— इसके बाद
	और इनके वेद्य)	दशदलं	— दस पत्ते वाले कमल
त्रिवलय-	— तीन बार लपेटी हुई		में (कणिपूर-नाभि)
स्फ़ुरत्-	— विकसित होती हुई	द्वादशदल	— फिर बारह पत्ते
विद्युत्	— बिजली		वाले कमल को
वह्नि-	— अग्नि (तथा)		(अनाहत-चक्र)
द्यु मणि-	— सूर्य के समान	कलाश्रं	— फिर १६ पत्ते वाले
नियुताभ-	— अनन्त		कमल को (विशुद्ध-

	कण्ठ)		(सहस्रार और ब्रह्म-
च	— और फिर		रन्ध्र में)
द्वयश्रं	— २ पत्ते वाले कमल कमल में (आज्ञा- भ्रू मध्य)	गिरिसुते !	— हे हिमालय की पुत्री पार्वती !
		नमस्ते	— तुझे नमस्कार हो ।
गतवति	— प्रवेश करती हुई		

कुलं केचित्प्राहुर्वपुरकुलमन्ये तव बुधाः
परे तत्सम्भेदं समभिदधते कौलमपरे ।
चतुर्णामप्येषामुपरि किमपि प्राहुरपरे
महामाये ! तत्त्वं तव कथममी निश्चिनुमहे ॥१०॥

पदच्छेदः

कुलं केचित् प्राहुः वपुः अकुलं अन्ये तव बुधाः
परे तत्सम्भेदं समभिदधते कौल अपरे ।
चतुर्णा अपि एषाम् उपरि किं अपि प्राहुः अपरे
महामाये ! तत्त्वं तव कथं अमी निश्चिनुमहे ॥१०॥

महामाये !	— हे महामाया !		त्तीर्ण) (मानते हैं),
केचित्	— कुछ लोग	परे	— इन से भी भिन्न कुछ
तव	— तुम्हारे	तत्संभेदं	— (इन दोनों) कुल तथा अकुल के मेल रूप, (विश्वमय तथा विश्वोत्तीर्ण)
वपुः	— स्वरूप को		
कुलं	— कुल रूप (३६ तत्त्व रूप, विश्वमय)		
प्राहुः	— कहते हैं	समभिधते	— कहते हैं,
अन्ये	— इन से भिन्न कुछ और	अपरे	— कुछ और लोग
		कौलम्	— कौलरूप (कहते हैं)
बुधाः	— ज्ञानी लोग	अपरे	— इन से भी उत्कृष्ट ज्ञानी
अकुलं	— कुलातीत (विश्वो-		

एषां	— इन	तव तत्त्वं	— तुम्हारे स्वरूप को
चतुर्णा अपि	— चारों से भी	कथं	— कैसे
उपरि	— ऊँचा (उत्कृष्ट)	अमी	— यह (उपरवर्णित)
किमपि	— कोई अलौकिक (अकथनीयरूप)	निश्चिनुमहे	— हम निश्चय रूप से जानें ! (नहीं जान सकते।)
प्राहुः	— मानते हैं,		

षडध्वारण्यानीं प्रलयरविकोटिप्रतिरुचा
रुचा भस्मीकृत्य स्वपदकमलप्रह्वशिरसाम् ।
वितन्वानः शैवं किमपि वपुरिन्दीवररुचिः
कुचाभ्यामानम्रः शिवपुरुषकारो विजयते ॥११॥

पदच्छेदः

षट्अध्वअरण्यानीं प्रलयरवि कोटि प्रतिरुचा
रुचा भस्मी कृत्य स्वपदकमलप्रह्व शिरसाम् ।
वितन्वानः शैवं किंअपि वपुः इन्दीवररुचिः
कुचाभ्याम् आनम्रः शिव पुरुषकारः विजयते ॥११॥

प्रलयरविकोटि-	प्रलयकाल के करोड़ों सूर्यों के		पर
प्रतिरुचा	— समान	प्रह्वशिरसाम्	— झुके हुए मस्तक वाले (भक्तों) को
रुचा	— तेज से	किमपि	— किसी अलौकिक (अकथनीय)
षट्अध्व-[1]	— छः अध्व (मार्ग) रूप (वर्ण अध्व इत्यादि)	इन्दीवररुचिः	— इन्दीवर फूल जैसी दीप्ति वाली
अरण्यानीं	— वन को	शैवं वपुः	— शिव के स्वरूप को
भस्मीकृत्य	— जलाकर,	वितन्वानः	— विस्तार से प्रकट
स्वपदकमल-	— अपने चरण कमलों		

१. भवन तत्त्व, मन्त्र, कला, वर्ण, पद ।

	करती हुई,		(अहं रूप वाली)
कुचाभ्याम्	— ज्ञान क्रियारूप स्तनों के बोझ से दुग्ध भार के)	पुरुषकारः	— उद्योग (शक्ति)
		विजयते	— जयशील है (सभी से उत्कृष्ट बढ चढ कर है।
आनम्रः	— झुकने से		
शिव-	— शिव की		

प्रकाशानन्दाभ्यामविदितचरीं मध्यपदवीं
प्रविश्यैतत्द्वन्द्वं रविशशिसमाख्यं कवलयन्।
प्रविश्योर्ध्वं नादं लयदहनभस्मीकृतकुलः
प्रसादात्ते जन्तुः शिवमकुलमम्ब! प्रविशति ॥१२॥

पदच्छेदः

प्रकाश आनन्दाभ्यां अविदितचरीं मध्य पदवीं
प्रविश्य एतत् द्वन्द्वं रविशशिसमाख्यं कवलयन्
प्रविश्य ऊर्ध्वं नादं लयदहनभस्मीकृतकुलः
प्रसादात् ते जन्तुः शिवं अकुलं अम्ब ! प्रविशति ॥१२॥

अम्ब !	— हे माता !	एतत् द्वन्द्वं	— इस जोडे को
अविदितचरीं	पहले अच्छी तरह न जानी हुई	कवलयन्	— ग्रास करता हुआ,
		ऊर्ध्वं नादं	— उपर वाले नाद में
मध्यपदवीं	— संवित में	प्रविश्य	— प्रवेश करके
प्रकाशानन्दाभ्य	चित् और आनन्द द्वारा	लय-	— लय (आत्म-साक्षात्कार रूप
प्रविश्य	— प्रवेश करके,	दहन-	— अग्नि से
रविशशिसमाख्यं	सूर्य और चन्द्रमा नाम वाले (प्राण, अपान)	भस्मीकृत-	— जलाये हुए (आत्म-सात् किए हुए)
		कुलः	— सभी तत्त्वों वाला

	(योगी)	शिवं	— शिव में
जन्तुः	— जीव	प्रविशति	— प्रवेश करता है
ते	— तुम्हारे		(शिव रूप ही बन
प्रसादात्	— अनुग्रह से		जाता है।)
अकुलं	— तत्त्वों से अतीत		

प्रियङ्गश्यामाङ्गीमरुणतरवास:किसलयां
समुन्मीलन्मुक्ताफलबहुलनेपथ्यकुसुमाम् ।
स्तनद्वन्द्वस्फारस्तवकनमितां कल्पलतिकां
सकृद्ध्यायन्तस्त्वां दधति शिवचिन्तामणिपदम् ।।१३।।

पदच्छेद:

प्रियंगु श्यामअङ्गीं अरुणतरवासः किसलयां
समुन्मीलत् मुक्ताफलबहुलनेपथ्य कुसुमाम् ।
स्तनद्वन्द्वस्फारस्तवकनमितां कल्पलतिकां ।
सकृत् ध्यायन्तः तवां दधति शिवचिन्तामणिपदम् ।।१३।।

प्रियंगु-	— (जिस देवी के) प्रियंगु[1] जैसे	बहुल-	— बहुतात से
		नेपथ्य-	— सजावट वाले
श्यामाङ्गीम्	— श्याम वर्ण अंग हैं (और)	कुसुमां	— फूलों युक्त (और)
		स्तनद्वन्द्व-	— ज्ञान क्रिया रूप दो स्तनों के
अरुणतर-	— लाल रंग के		
वासः	— वस्त्र	स्फार-	— फैलाव रूप
किसलयां (इव)	बोरों जैसे,	स्तवक-	— गुच्छे से
समुन्मीलत्-	— पूरी तरह खिले हुए	नमितां	— झुकी हुई
मुक्ताफल-	— मोती रूप फल की	कल्पलतिकां	— (भोग तथा मोक्ष

१. एक लता का नाम जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि जहां उसे किसी स्त्री ने स्पर्श किया कि, वह फ़ूलने लगती है।

	सिद्ध कराने वाली)		(भक्त)
	कल्प लता रूप	शिवचिन्तामणि-	शिवरूप चितामणि-
त्वां	— तुम्हारे स्वरूप को	पदं	रत्न के स्थान को
सकृत्	— एक ही बार (नि-रन्तर)	दधति	— धारण करते हैं। (प्राप्त करते हैं)
ध्यायन्तः	— ध्यान करने वाले		

षडाधारावर्तैरपरिमितमन्त्रोर्मिपटलै-
श्चलन्मुद्राफेनैर्बहुविधलसद्दैवतझषैः ।
क्रमस्त्रोतोभिस्त्वं वहसि परनादामृतनदीं
भवानि ! प्रत्यग्रा शिवचिदमृताब्धिप्रणयिनी ।।१४।।

पदच्छेदः

षट्आधार आवर्तैः अपरिमितमन्त्रऊर्मिपटलैः
चलन् मुद्राफेनैः बहुविधलसत् दैवतझषै ।
क्रमस्त्रोतोभिः त्वं वहसि परनाद अमृत नदीं
भवानि ! प्रत्यग्रा शिवचित् अमृत अब्धि प्रणयिनी ।।१४।।

भवानि !	— हे देवि !	षट्आधार-	— छः आधार रूप काम, क्रोध, लोभ मोह, मद, अहंकार)
त्वं	— तुम		
प्रत्यग्रा	— नित्य नवीन (अवि-नाशी स्वरूप)	आवर्तैः	— भंवरों वाले,
शिव-	— शिव रूप	अपरिमित-	— अनन्त
चित् अमृत-	— चैतन्य अमृत के	मंत्र-	— मन्त्ररूप
अब्धि-	— सागर में	ऊर्मिपटलैः	— लहरियों के समूहों वाले,
प्रणयिनी	— पहुंचाने वाली (जीव को शिव के साथ एकता कराने वाली)	चलन्-	— चंचल
		मुद्राफेनैः	— मुद्रारूप झागों वाले
		बहुविधलसत्	— अनेक प्रकार से वि-

	कसित		अर्हत)
वैवतझषैः	— देवता (इन्द्रियरूप) मगरमच्छों से भरे	नदीं	— रूप अमृत की नदी को
क्रमस्रोतोभिः	— क्रम से से चलने वाले प्रवाहों वाली (नदी को)	वहसि	— चलाती हो (शिव सागर में पहुंचाती हो।)
परनादामृत-	— परमनाद (अकृत्रिम		

महीपाथोवह्नि्नश्वसनवियदात्मेन्दु रविभि-
र्वपुर्भिर्ग्रस्तांशैरपि तव कियानम्ब ! महिमा ।
अमून्यालोक्यन्ते भगवति ! न कुत्राप्यणुतरा-
मवस्थां प्राप्तानि त्वयि तु परमव्योमवपुषि ॥१५॥

पदच्छेदः

महो पाथः वह्नि श्वसन वियत् आत्मा इन्दुरविभिः
वपुर्भिः ग्रस्तअंशः अपि तव कियान् अम्ब ! महिमा ।
अमूनि आलोक्यन्ते भगवति ! न कुत्र अपि अणुतराम्
अवस्थां प्राप्तानि त्वयि तु परमव्योमवपुषि ॥१५॥

अम्ब !	— हे माता !	ग्रस्तांशैः	— ग्रास हुए अङ्गो सहित से
मही[1]	— पृथ्वीः		
पाथो[2]	— जल,	अपि	— भी
वह्नि[3]	— अग्नि,	तव	— तुम्हारी
श्वसन,[4]	— आयु,	महिमा	— महिमा
वियत्[5]	— आकाश	कियान्	— कितनी बडी है जो) वर्णन नहीं की जा सकती)
आत्मा,[6]	— जीवआत्मा (प्रमात)		
इन्दु,[7]	— चन्द्रमा (प्रमेय)		
रविभिः[8]	— सूर्य रूप (प्रमाण)	अमूनि	— यह सब (आठों)
वपुर्भिः	— स्वरूपों से	त्वयि तु	— तुझ

परमव्योमवपुषि	परमचिदाकाश स्वरूप में	प्राप्तानि	— पहुंचकर
		न कुत्रापि	— कहीं भी नहीं
अणुतरांअवस्थां	अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था को	आलोक्यन्ते	— दिखाई देते हैं।

मनुष्यास्तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयमिदं
भवाम्भोधौमग्नं त्रिगुणलहरीकोटिलुठितम्।
कटाक्षश्चेदत्र क्वचन तव मातः! करुणया
शरीरी सद्योऽयं व्रजति परमानन्दतनुताम् ॥१६॥

पदच्छेदः

मनुष्याः तिर्यञ्चः मरुतः इति लोकत्रयम् इदं
भव अम्भोधौमग्नं त्रिगुणलहरी कोटि लुठितम्।
कटाक्षः चेत् अत्र क्वचन तव मातः! करुणया
शरीरी सद्यः अयं व्रजति परमानन्दतनुताम् ॥१६॥

मनुष्याः	— मनुष्य,	मातः!	— हे माता,
तिर्यञ्चः	— पशु पक्षी आदि,	अत्र	— इन में से
मरुतः	— देवता समूह,	क्वचन	— किसी एक पर
इति	— इस प्रकार	तव करुणया	— तुम्हारी दया से
इदम्	— यह	कटाक्षः	— अनुग्रह की दृष्टि
लोकत्रयम्	— तीन लोकों का समूह	चेत्	— यदि हो तो, (तो)
त्रिगुण-	— तीन गुण (सत्व, रज, तम) रूप	शरीरी अयं	— वह जीव
		सद्यः	— तत्क्षणात्
लहरीकोटि	— करोडों लहरों से	परमानन्द-	— परमानन्द-
लुठितम्	— व्याकुल किया हुआ	तनुताम्	— स्वरूप भाव को
भवाम्भोधौ	— संसार सागर में	व्रजति	— प्राप्त होता है।
मग्नम्	— डूबा हुआ है,		

कलां प्रज्ञामाद्यां समयमनुभूतिं समरसां
गुरुं पारम्पर्यं विनयमुपदेशं शिवकथाम् ।
प्रमाणं निर्वाणं परममतिभूतिं परगुहां
विधिं विद्यामाहुः सकलजननीमेव मुनयः ।।१७।।

पदच्छेदः

कलां प्रज्ञां आद्यां समयं अनुभूतिं समरसां
गुरुं पारम्पर्यं विनयं उपदेशं शिवकथाम् ।
प्रमाणं निर्वाणं परमं अतिभूतिं परगुहाम्
विधिं विद्यां आहुः सकलजननीं एव मुनयः ।।१७।।

मुनयः	— मननशील पुरुष	विनयं	— आदर रूप,
सकलजननीं	— जगत की माता	उपदेशं	— उपदेश रूप
एवं	— (देवी) को ही	प्रमाणं,	— प्रमाण रूप,
कलां	— क्रिया शक्ति रूप,	निर्वाणं	— मुक्ति रूप,
प्रज्ञां	— बुद्धि रूप,	परमं	— उत्कृष्ट
आद्यां	— आदि विद्या रूप	अतिभूतिं	— ऐश्वर्य रूप
समयम्	— परमसिद्धान्त रूप,	परगुहां	— अतिरहस्य माया-रूप
अनुभूत्तिं	— अहं विमर्श के अनुभव रूप	विधिं	— विधि रूप,
समरसां	— समरस	विद्यां	— विद्या रूप
शिवकथां	— शिव के विमर्शरूप,	आहुः	— इन इन अनन्त नामों से पुकारते हैं ।
गुरुं	— गुरु रूप,		
पारम्पर्यं	— दीक्षा रूप,		

प्रलीने शब्दौघे तदनु विरते बिन्दुविभवे
ततस्तत्त्वे चाष्टध्वनिभिरनुपाधिन्युपरते ।

श्रिते शाक्ते पर्वण्यनुकलितचिन्मात्र गहनां
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिवाख्यां परतनुम् ॥१८॥

पदच्छेदः

प्रलीने शब्द ओघे तत् अनु विरते बिन्दुविभवे
ततः तत्त्वे च अष्टध्वनिभिः अनुपाधिनि उपरते ।
श्रिते शाक्ते पर्वणि अनुकलित चिन्मात्र गहनां
स्वसंवित्ति योगी रसयति शिव आख्यां परतनुम् ॥१८॥

शब्दओघे — [1]नाद समूह, तथा शब्द स्पर्श आदि का समूह
प्रलीने — लय हो जाने पर,
तत् अनु — इसके पश्चात्
बिन्दुविभवे — मंत्र कला के बिन्दु के (अर्ध चन्द्र का निरोध)
विरते — हट जाने पर,
ततः च — इसके बाद
अष्टध्वनिभिः आठ वर्गों की[2]
अनुपाधिनि — उपाधि रहित
तत्त्वे — तत्त्व के
उपरते — शांत हो जाने पर
शाक्तेपर्वणि — शक्ति की अवस्था का
श्रिते — आश्रय लेने पर
योगी — उत्तम योगी पुरुष
शिवाख्यां — शिव ही नाम वाली
परतनुं — उत्कृष्ट स्वरूप
अनुकलित- — भली प्रकार विमर्श से पहचानी हुई
चिन्मात्रगहनां अति सूक्ष्म और चैतन्य रूप
स्वसंवित्ति — अपनी संवित् (अहन्ता) का
रसयति — चमत्कार लेता है। (चिदानन्दमय बन जाता है।)

---

१. (क) पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी (तीन)
(ख) सूक्ष्म पश्यन्ती, सूक्ष्म मध्यमा, सूक्ष्म वैखरी (तीन)
(ग) स्थूल पश्यन्ती, स्थूल मध्यमा, स्थूल वैखरी (तीन)
(घ) ओंकर (कुल संख्या १०)

२. आठवर्ग — अ — अः, कवर्ग, चवर्ग टवर्ग, तवर्ग पवर्ग, य — व, श — ह

परानन्दाकारां निरवधिशिवैश्वर्यवपुषं
निराकारज्ञान प्रकृतिमनवच्छिन्नकरुणाम् ।
सवित्रीं भूतानां निरतिशयधामास्पदपदां
भवो वा मोक्षो वा भवतु भवतीमेव भजताम् ॥१६॥

पदच्छेदः

परानन्द आकारां निरवधि शिव ऐश्वर्य वपुषं
निराकार ज्ञान प्रकृति अनवच्छिन्न करुणाम् ।
सवित्रीं भूतानां निरतिशयधाम आस्पद पदां
भवः वा मोक्षः वा भवतु भवतीम् एव भजताम् ॥१६॥

परानन्द- — परमानन्द (आनन्द-शक्ति)
आकारां — स्वरूप
निरवधि- — असीम तथा अनन्त
शिवऐश्वर्य — शिव की ऐश्वर्यशक्ति (क्रिया शक्ति) के
वपुषं — स्वरूप
निराकारज्ञान अति सूक्ष्म ज्ञान शक्ति के
प्रकृतिम् — स्वभाव वाली,
अनवच्छिन्न- — अपार
करुणाम् — अनुग्रह रूप,
भूतानां — सभी जड चेतन पदार्थों की
सवित्रीं — उत्पन्न करने वाली (सृष्टि शक्ति, इच्छा)
निरतिशय- — सब से उत्कृष्ट
धाम- — अवस्था (परमशिव) का
आस्पदपदां — आश्रय बनी हुई
भवतीम् एव — केवल आप ही का
भजतां — विमर्श करने वालों को
भवो वा — चाहे संसार ही (हो)
मोक्षो वा — या चाहे मुक्त
भवतु — हो (उनके लिए संसार और निःसंसार भाव दोनों एक समान हैं ।)

जगत्काये कृत्वा तमपि हृदये तच्च पुरुषे
पुमांसं बिन्दुस्थं तमपि परनादाख्यगहने ।
तदेतज्ज्ञानाख्ये तदपि परमानन्दविभवे
महाव्योमाकारे ! त्वदनुभवशीलो विजयते ।।२०।।

पदच्छेद:

जगत् काये कृत्वा तं अपि हृदये तत् च पुरुषे
पुमांसं बिन्दुस्थं तं अपि पर नादआख्य गहने ।
तत् एतत् ज्ञान आख्ये तत् अपि परमानन्द विभवे
महाव्योम आकारे ! त्वत् अनुभव शीलः विजयते ।।२०।।

जगत्	—	जगत् को
काये	—	अपने शरीर में
कृत्वा	—	(विमर्श से लय) करके
तं अपि	—	उस शरीर को भी
हृदये	—	हृदय (संवित्) में
तत् च	—	उस हृदय को भी
पुरुषे	—	पुरुष (जीवात्मा) में
तं	—	उस
बिन्दुस्थं	—	बिन्दु (ज्ञान) में ठहरे हुए
पुमांसं अपि	—	पुरुष को भी
परनादाख्य-	—	परनाद नाम वाले (ईश्वर तत्त्व)
गहने	—	घने स्वरूप में,
तत् एतत्	—	उस पर नाद को भी
ज्ञान आख्ये	—	ज्ञान नाम वाले स्व-रूप (सदाशिव तत्त्व) में
तत् अपि	—	उस सदाशिव अवस्था को भी
परमानंदविभवे		परमानंद रूप ऐश्वर्य में (ऊपर से नीचे तक एक दूसरे से क्रमशः लय करते हुए
महाव्योमाकारे !		हे चिदाकाश रूप देवी !
त्वत् अनुभवशीलः		आपके अनुभव (विमर्श) स्वभाव वावा योगी
विजयते	—	सब से उत्कृष्ट (परम-शिव) अवस्था को प्राप्त होता है ।

विधे विद्ये वेद्ये विविधसमये वेदजननि !
विचित्रे ! विश्वाद्ये ! विनयसुलभे वेदगुलके
शिवाज्ञे शीलस्थे ! शिवपदवदान्ये ! शिवनिधे !
शिवे मातर्मह्यं त्वयि वितर भक्तिं निरुपमाम् ॥२१॥

पदच्छेदः

विधे विद्ये वेद्ये विविधसमये वेदजननि !
विचित्रे ! विश्वाद्ये ! विनयसुलभे वेदगुलिके !
शिवाज्ञे शीलस्थे ! शिवपदवदान्ये ! शिवनिधे !
शिवे मातः मह्यां त्वयि वितरभक्ति निरुपमाम् ॥२१॥

विधे ! — हे विधिरूप,
विद्ये ! — हे सभीविद्याओं के रूप
वेद्ये ! — [1]हे वेद्यों (विषय) के रूप में व्यापिनी, [2]हे जानने योग्य,
विविधसमये ! हे नाना सिद्धान्तों के रूप,
वेदजननि ! — हे वेदों की माता,
विचित्रे ! — हे नानाता रूपों वाली (भेदमयी)
विश्व आद्ये !— हे सभी जगत् के आद्य रूप,
विनयसुलभे !— हे भक्ति से सुप्राप्य !
वेदगुलिके ! — हे वेदों की सार रूप
शिव आज्ञे ! — हे शिव की आज्ञा (स्वतन्त्र इच्छा)
शीलस्थे ! — हे चित् स्वभाव में अटल स्थिति वाली,
शिवपदवदान्ये ! हे शिव के साथ ऐक्य दिलाने वाली,
शिवनिधे ! — हे शिव की सार-रूप, हे कल्याण भरी अनुग्रहशक्ति
मातः ! — हे माता
माह्यं — मुझे
शिवेत्वयि — तुझ में ही जो शिव से अभिन्न है
निरुपमाम् — जिसकी कोई उपमा नहीं ऐसी
भक्ति — भक्ति (प्रेम)
वितर — दे ।

विधेर्मुण्डं हृत्वा यदकुरुत पात्रं करतले
हरिं शूलप्रोतं यदऽगमयदंसाभरणताम् ।
अलंचक्रे कण्ठं यदपि गरलेनाम्ब ! गिरिशः
शिवस्थायाः शक्तेस्तदिदमखिलं ते विलसितम् ॥२२॥

पदच्छेद:

विधेः मुण्डं हृत्वा यत् अकुरुत पात्रं करतले
हरिं शूलप्रोतं यत् अगमयत् अंस आभरणताम् ।
अलं चक्रे कण्ठं यत् अपि गरलेन अम्ब ! गिरिशः
शिवस्थायाः शक्तेः तत् इदम् अखिलं ते विलसितम् ॥२२॥

अम्ब !	— हे माता,	अगमयत्	— पहुंचाया (उसे अपने कंधे का आभूषण बनाया)
गिरिशः	— शङ्कर ने		
यत्	— जो		
विधेः	— ब्रह्मा जी का (पांचवां)	यत् अपि	— और जो
		कंठं	— अपने गले की
मुण्डं	— सिर	गरलेन	— हलाहल विष से
हृत्वा	— काटकर	अलंचक्रे	— शोभायमान बनाया (विष को पी लिया)
करतले	— (उसे) हाथ में		
पात्रं	— (भिक्षा)पात्र(कपाल)	ततइदंअखिलं	— तो वह सब
अकुरुत	— बनाया,	ते	— तुझ
यत्	— जो	शिवस्थायाः	— शिव के साथ अभिन्न भाव से ठहरी हुई
हरिं	— विष्णु को		
शूलप्रोतं	— त्रिशूल में पिरोकर	शक्तेः	— शक्ति का ही
अंस-	— (अपने) कंधे के	विलसितम्	— विकास है ।
आभरणतां	— भूषण भाव को		

विरिञ्च्याख्या मातः ! सृजसि हरिसंज्ञा त्वमवसि
त्रिलोकीं रुद्राख्या हरसि विदधासीश्वरदशम् ।

भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाशौघदलिनी
त्वमेवैकाऽनेका भवसि कृतभेदैर्गिरिसुते ! ॥२३॥

पदच्छेदः

विरिञ्चि आख्या मातः सृजसि हरिसंज्ञा त्वम् अवसि
त्रिलोकीं रुद्रआख्या हरसि विदधासि ईश्वर दशाम्
भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाशओघ दलिनी
त्वं एव एका अनेका भवसि कृतभेदै गिरिसुते ! ॥२३॥

गिरिसुते !	— हे पार्वती !	विदधासि	— (सूक्ष्म रूप में) धारण करती हो,
मातः !	— हे माता,	सादाख्य	— सदाशिव (शक्ति) नामक
त्वं	— तुम	भवन्ती	— बनकर
विरिञ्च-	— ब्रह्मा (शक्ति)	पाशौघ-	— बन्धनों के समूहों[1] को (तीन मलों को)
आख्या	— नाम वाली (शक्ति के रूप से)	दलिनी	— काटने वाली (बनकर)
त्रिलोकी	— तीनों लोकों की	शिवयसि	— आनन्दमय भी बनाती हो,
सृजसि	— सृष्टि करती हो,	त्वं	— तुम
हरिसंज्ञा	— विष्णु (शक्ति) नाम वाली (बनकर)	एका एव	— एक ही (अभेदमय) होकर भी
अवसि	— पालन (स्थिति) करती हो	कृतभेदैः	— (अपनी) स्वतन्त्रता से उत्पन्न किए हुए भेदों से
रुद्राख्या	— रुद्र (शक्ति) नाम वाली (बनकर)	अनेका	— अनन्त (भेदमय) रूपों वाली
हरसि	— विश्व का संहार करती हो,	भवसि	— बनती हो ।
ईश्वरदशां	— ईश्वर दशा (तिरोधान शक्ति) में		

१. अणवमल, मायामल और कार्ममल

मुनीनां चेतोभिः प्रमृदितकषायैरपि मनाग्
अशक्ये संस्प्रष्टुं चकितचकितैरम्ब ! सततम् ।
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृतिकठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पदकिसलये पार्वति ! पदम् ।।२४।।

पदच्छेदः

मुनीनां चेतोभिः प्रमृदितकषायैः अपि मनाक्
अशक्ये संस्प्रष्टुं चकित चकितैः अम्ब ! सततम्
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृति कठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पदकिसलये पार्वति ! पदम् ।।२४।।

अम्ब ! — हे माता,
प्रमृदित्-[1] — पूर्णता हटाये हुए
कषायैः — राग वाले जिन मुनियों के चित से रागद्वेषादि दूर हो चुके हैं)
चकितचकितैः अत्यन्त भयभीत
मुनीनां — मुनियों की
चेतोभिः — बुद्धियों से
अपि — भी
सततं — नित्य
मनाक् — अंशमात्र भी
संस्प्रष्टुं — स्पर्श करने के लिए (जानने के लिए)
अशक्ये ! — अशक्य (मुनि भी तुम्हें जान नहीं सकते)
पार्वति ! — हे पार्वती,
श्रुतीनां मूर्धानः — वेदों के रहस्य के — प्रधान बने हुए (उपनिषद्)
प्रकृतिकठिनाः — जो स्वभाव से ही कठिन हैं
ते — तुम्हारे
कोमलतरे — अतिकोमल
पदकिसलये — चरणकमलों में
कथं — किस प्रकार
पदं — स्थान
विन्दन्ते — पा सकते हैं। (अर्थात् नहीं पा सकते हैं)

---

१. अष्टांग योग के यम नियम आदि के द्वारा जिन्होने अपने इन्द्रियों को जीता है

तडिद्विल्लीं नित्याममृत सरितं पाररहितां
मलोत्तीर्णां ज्योत्स्नां प्रकृतिमगुणग्रन्थिगहनाम् ।
गिरां दूरां विद्यामविनतकुचां विश्वजननी-
मपर्यन्तां लक्ष्मीमभिदधति सन्तो भगवतीम् ।।२५।।

पदच्छेदः

तडित् वल्लीं नित्यां अमृत सरितं पाररहितां
मल उत्तीर्णां ज्योत्स्नां प्रकृतिं अगुणग्रन्थिगहनाम् ।
गिरां दूरां विद्यां अविनत कुचां विश्व जननीं
अपर्यन्तां लक्ष्मीं अभिदधति सन्तः भगवतीम् ।।२५।।

सन्तः	— आध्यात्मिक पुरुष (परमार्थ के जानने वाले)	गहनाम्	— अगम (अति सूक्ष्म तथा अलौकिक)
भगवतीं	— देवी को	प्रकृति[1]	— प्रकृति (जो गुणों सहित है), (हो)
तडित् वल्लीं	— विद्युत(बिजली) की लता	गिरां दूरां	— वाणियों से परे (अर्थात् परावाणी हो (परन्तु)
नित्यां	— (परन्तु) अचल,	विद्यां	— सभी ज्ञानरूप हो(जो सभी वाणीमय हैं,)
पाररहितां	— जिसका कोई पार नहीं ऐसी	अविनत-	— न झुके हुए
अमृतसरितं	— चिदमृत की नदी,	कुचां	— ज्ञान क्रियारूप स्तनों वाली अथवा प्रकाश और आनन्द स्वरूप (होते हुए भी)
ज्योत्स्नां	— चांदनी (परन्तु)		
मल उत्तीर्णां	— मलों (कलंक) रहित		
अगुणग्रंथि	— गुणों (सत्, रज, तमोगुण) की ग्रंथियों रहित	विश्वजननी	— जगत् की माता

१. वास्तव में प्रकृति सत्तोगुण, रजोगुण और तमोगुण से संवलित है पर तुम उस से उल्लंगित कुछ और ही अलौकिक हो ।

अपर्यन्तां	— सीमा रहित		नामों से
लक्ष्मीं	— लक्ष्मी इन इन अनेक	अभिदधति	— पुकारते हैं।

शरीरं क्षित्यम्भः प्रभृतिरचितं केवलमिदं
सुखं दुःखं चायं कलयति पुमांश्चैतन इति।
स्फुटं जानानोऽपि प्रभवति न देही रहयितुं
शरीराहंकारं तव समयबाह्यो गिरिसुते ! ॥२६॥

पदच्छेदः

शरीरं क्षिति अम्भः प्रभृतिरचितं केवलं इदम्
सुखं दुःखं च अयं कलयति पुमान् चेतनः इति।
स्फुटं जानानः अपि प्रभवति न देही रहयितुं
शरीर अहङ्कारं तव समयबाह्यः गिरिसुते ! ॥२६॥

गिरिसुते !	— हे पार्वती,	इति	— ही
अयं	— यह	कलयति	— जानता है,
चेतनः	— चेतन[1]]	तव	— तुम्हारे
पुमान्	— पुरुष]	समयबाह्यः	— सिद्धान्त को न जा-
इदं	— इस		नने वाला
केवलं	— केवल	स्फुटं	— भली प्रकार
क्षिति-	— पृथ्वी,	जानानः अपि	— जानता हुआ भी
अम्भः-	— जल,	देही	— शरीर धारी (देहा-
प्रभृति	— आदि पंच महाभूत		भिमानी)
	का	शरीर अहंकारं	देहाभिमान को
रचितं	— बना हुआ,	रहयितुं	— छोडने में
शरीरं	— शरीर को	न प्रभवति	— समर्थ नहीं बनता है।
सुखं दुःखं च	— और सुख दुःख को		

१. शरीर को ही चेतना का स्त्रोत्र समझने वाला यह भौतिकवादी मनुष्य।

पिता माता भ्राता सुहृदऽनुचरः सद्म गृहिणी
वपुः पुत्रो मित्रं धनमपि यदा मां विजहति।
तदा मे भिन्दाना सपदि भयमोहान्धतमसं
महाज्योत्स्ने ! मातर्भव करुणया सन्निधिकरी ॥२७॥

पदच्छेदः

पिता माता भ्राता सुहृत् अनुचरः सद्म गृहिणी
वपुः पुत्रो मित्रं धनं अपि यदा मां विजहति।
तदा मे भिन्दाना सपदि भय मोह अन्ध तमसं
महाज्योत्स्ने ! मातः ! भव करुणया सन्निधिकरी ॥२७॥

महाज्योत्स्ने !	हे महाप्रकाशमयी
मातः	— जगत् को उत्पन्न तथा पालन करने वाली मां
पिता	— पिता,
माता	— मां,
भ्राता	— भाई,
सुहृद्	— अत्यन्त प्रेमी,
अनुचरः	— नौकर,
सद्म	— घर,
गृहिणी	— पत्नी
वपुः	— शरीर,
पुत्रः	— पुत्र,
मित्रं	— मित्र,
धनं अपि	— और धन भी
यदा	— जिस समय (मरण काल पर)
मां	— मुझे
विजहति	— छोड दें,
तदा	— तो उस समय
करुणया	— दया करके
मे	— मेरे
भयमोहान्ध-	— भय और मोहरूप
तमसं	— अन्धकार को
भिन्दाना	— नाश करती हुई
सपदि	— तुरन्त ही
सन्निधिकरी	— प्रत्यक्षरूप से प्रकट
भव	— हो जाइये। मुझे अपने साथ एकता करा दीजिये।

सुता दक्षस्यादौ किल सकलमातस्त्वमुदभूः
सदोषं तं हित्वा तदनु गिरिराजस्य तनया ।
अनाद्यन्ता शम्भोरपृथगपि शक्तिर्भगवती
विवाहाज्जायासीत्यहह चरितं वेत्ति तव कः ॥२८॥

पदच्छेदः

सुता दक्षस्य आदौ किल सकलमातः ! त्वं उदभू,
सदोषं तं हित्वा तत् अनु गिरिराजस्य तनया ।
अनाद्यन्ता शम्भोः अपृथक् अपि शक्ति भगवती
विवाहात् जाया असि इति अहह चरितं वेत्ति तव कः ॥२८॥

सकल मातः !	— हे सब की मां,	भगवती	— ऐश्वर्यवती
त्वम	— तुम	अपृथक् अपि शक्तिः	(शिव से) अभिन्न (उसकी) शक्ति होते हुए भी
आदौ	— पहिले		
किल	— निश्चय ही	विवाहात्	— विवाह करके
दक्षस्य	— दक्ष प्रजापति की	शम्भोः	— शिव की
सुता	— पुत्री (के रूप में)	जाया	— पत्नी
उदभूः	— उत्पन्न हुई,	असि	— बनी,
तत्अनु	— इसके बाद	अहह	— आश्चर्य है,
तं	— उस	तव	— तुम्हारे
सदोषं	— दोषी (दक्ष प्रजापति को)	चरितं	— कर्तव्यों को
हित्वा	— छोडकर	कः	— कौन
गिरिराजस्य	— हिमालय की	वेत्ति !	— जान सकता है । (कोई भी नहीं जान सकता)
तनया	— बेटी (बनी),		
अनाद्यन्ता	— आदि और अन्त रहित		

कणास्त्वद्दीप्तीनां रविशशिकृशानुप्रभृतयः
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतमाऽनन्दकणिका।
शिवादिक्षित्यन्तं त्रिवलयतनोः सर्वमुदरे
तवास्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदि चित्रं भगवति ॥२९॥

पदच्छेदः

कणाः त्वत् दीप्तीनां रविशशि कृशानु प्रभृतयः
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतं आनन्द कणिका।
शिवआदि क्षिति अन्तं त्रिवलयतनोः सर्वं उदरे
तव आस्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदि चित्रं भगवति ! ॥२९॥

रवि-	— सूर्यः	शिवादि-	— शिव से
शशि-	— चन्द्रमा,	क्षित्यन्तं	— पृथिवी तक
कृशानु-	— अग्नि,	सर्वं	— सारा विश्व
प्रभृतयः	— इत्यादि (सभी तेजस्वी	त्रिवलयतनोः	— तीन लपेट वाले (प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय स्वरूप)
त्वत्-	— तुम्हारी		
दीप्तीनां	— अनन्त दीप्तियों के		
कणाः	— अत्यंत छोटे अंश हैं, अर्थात् तुम्हारे तेज के आंशिक स्वरूप है	तव	— तुम्हारे
		उदरे	— स्वरूप में
		आस्ते	— ठहरा हुआ है
क्षुद्रं	— अति तुच्छ (तुम्हारे अपार स्वरूप के मुकाबले में)	भगवति !	— हे भगवती,
		चित्रम्[1]	— यह आश्चर्य की बात है
परं ब्रह्म	— परं ब्रह्म भी	भक्तस्य	— भक्त के
नियतं	— निश्चय ही	हृदि	— हृदय में
तव	— तुम्हारे	स्फुरसि	— तुम विकसित होती हो।
आनन्दकणिका	आनन्द का एक कण है		

---

१. भक्त के हृदय की इतनी विशालता है कि देवी का अपार स्वरूप जिसके सामने सूर्य, चन्द्रमा, आदि तुच्छ हैं, उस हृदय में समा जाता है।

त्वया यो जानीते रचयति भवत्यैव सततं
त्वयैवेच्छत्यम्ब ! त्वमसि निखिला यस्य तनवः ।
गतः साम्यं शम्भुर्वहति परमं व्योम भवती
तथाप्येवं हित्वा विहरति शिवस्येति किमिदम् ॥३०॥

पदच्छेदः

त्वया यो जानीते रचयति भवत्या एव सततं
त्वया एव इच्छति अम्ब ! त्वं असि निखिलाः यस्य तनवः ।
गतः साम्यं शम्भुः वहति परमं व्योम भवती
तथा अपि एवं हित्वा विहरति शिवस्य इति किं इदम् ॥३०॥

अम्ब !	— हे माता !	असि	— हो,
यः	— जो (शिव)	शम्भुः	— शिव (भी तुम्हारे स्वरूप के कारण)
त्वया	— तुम्हारे ही स्वरूप से (ज्ञान शक्ति से)	साम्यं गतः	— समभाव को पहुंचकर
जानीते	— जाना जाता है (ज्ञान शक्ति) (क)	परमं व्योम	— उत्कृष्ट चिदाकाश को
		वहति	— धारण करता है,
भवत्या एव	— तुम्हारे ही स्वरूप से	एवं	— इस प्रकार के स्थूल सूक्ष्म स्वभाव को
रचयति	— सृष्टि करता है (क्रियाशक्ति) (ख)	हित्वा	— छोडकर
सततं	— नित्य	भवती	— आप
त्वया एव	— तुम्हारे ही स्वरूप से	शिवस्य	— शिव के (चिदाकाश) स्वभाव से
इच्छति	— इच्छा करता है, (इच्छाशक्ति) (ग)	विहरति	— क्रीडा करती हो,
यस्य	— जिसके	इति	
निखिलाः	— सभी	किं इदम्	— यह कैसी आश्चर्य की बात है ।
तनवः	— स्वरूव		
त्वम्	— तुम ही		

पुरः पश्चादन्तर्बहिरपरिमेयं परिमितं
परं स्थूलं सूक्ष्मं सकुलमकुलंगुह्यमगुहम् ।
दवीयो नेदीयः सददिति विश्वं भगवतीं
सदा पश्यन्त्याज्ञां वहसि भुवनक्षोभजननीम् ।।३१।।

पदच्छेदः

पुरः पश्चात् अन्तर् बहिः अपरिमेयं परिमितम्
परं स्थूलं सूक्ष्मं सकुलं गुह्यं अगुहम् ।
दवीयः नेदीयः सत् असत् इति विश्वं भगवतीम्
सदा पश्यन्ति आज्ञां वहसि भुवन क्षोभजननीम् ।।३१।।

पुर,	— प्रत्यक्ष (जाना हुआ)	नेदीयः	— अति प्रकट (अपने साथ ही रहने वाला)
पश्चात्	— परोक्ष, (न जाना हुआ)	सत्-	— सत्ता रूप
अन्तर्	— अन्तःकरणों का विषय	असत्	— अभाव (शून्य) रूप
		इति	— इन इन भिन्न भिन्न रूपों से
अपरिमेयं	— अनन्त,		
परिमितं	— छोटा, (संकुचित)	विश्वं	— सारे जगत् को
परं	— उत्कृष्ट,	भगवतीं	— आपका ही स्वरूप
स्थूलं	— स्थूल,	सदा	— नित्य
सूक्ष्मं	— सूक्ष्म,	पश्यन्ति	— (भक्तजन) देखते हैं
सकुलं	— विश्वमय,	भुवन-	— सारे विश्व को
अकुलं	— विश्वोत्तीर्ण,	क्षोभजननीं	— क्षोभ उत्पन्न कराने वाले (भक्ष्मय बनाने वाले)
गुह्यं	— छिपाने योग्य,		
अगुहं	— प्रकट		
दवीयो	— बहुत ही दूर (अपने से भिन्न)	आज्ञां	— स्वभाव को
		वहसि	— धारण करती हो ।

मयूखाः पूष्णीव ज्वलन इव तद्दीप्तिकणिकाः
पयोधौ कल्लोलप्रतिहतमहिम्नीव पृषतः।
उदेत्योदेत्याम्ब! त्वयि सह निजैस्तात्त्विककुलै-
र्भजन्ते तत्त्वौघाः प्रशममनुकल्पं परवशाः ॥३२॥

पदच्छेदः

मयूखाः पूष्णि इव ज्वलने इव तत् दीप्तिकणिकाः
पयोधौ कल्लोल प्रतिहतमहिम्नि इव पृषतः।
उदेत्य उदेत्य अम्ब! त्वयि सह निजैः तात्त्विककुलैः
भजन्ते तत्त्व ओघाः प्रषमम् अनुकल्पं परवशाः ॥३२॥

अम्ब! — हे माता!
मयूरवाः — (जिस प्रकार) किरणें
पूष्णि — सूर्य में
इव — जैसे, (विलीन होती है)
ज्वलनेइव — अग्नि में जैसे
तद्दीप्तिकणिका उसी अग्नि के कण (विलीन होते हैं)
पयोधौ — सागर में
कल्लोल- — तरंगों द्वारा
प्रतिहत- — धारण किए हुए
महिम्न — महिमा वाले सागर में)
पृषतः इव — छींटें जैसे (निकल कर उसी में लय हो जाते हैं वैसे ही)
तत्त्वओघाः — तत्त्वों के समूह
उदेत्य उदेत्य — बार २ उदय होकर
निजैः — अपने अपने
तात्त्विक- — तेजोमय
कुलैः सह — समूहों के साथ
परवशाः — बेबस होकर
त्वयि — तुम्हारे ही स्वरूप में
अनुकल्पं — दृढ प्रकार से
प्रशम — शान्ति को
भजन्ते — प्राप्त करते हैं (तुम में ही लय हो जाते हैं।

विधुर्विष्णुर्ब्रह्‌मा प्रकृतिरणुरात्मादिनकरः
स्वभावो जैनेन्द्रः सुगतमुनिराकाशमनिलः।
शिवः शक्तिश्चेति श्रुतिविषयतां तामुपगतां
विकल्पैरेभिस्त्वामऽभिदधति सन्तो भगवतीम् ।।३३।।

पदच्छेदः

विधुः विष्णुः ब्रह्मा प्रकृतिः अणुः आत्मा दिनकरः
स्वभावः जैनेन्द्रः सुगतमुनिः आकाशं अनिलः।
शिवः शक्तिः च इति श्रुतिविषयतां तां उपगतां
विकल्पैः एभिः त्वां अभिदधति सन्तः भगवतीम् ।।३३।।

विधुः — चन्द्रमा, (आनन्द शक्ति)
विष्णुः — विष्णु (व्यापक)
ब्रह्मा — ब्रह्मा,
प्रकृतिः — प्रकृतितत्त्व,
अणुः — जीव,
आत्मा — चित् शक्ति,
दिनकरः — सूर्य,
स्वभावः — स्वभाव,
जैनेन्द्रः — महावीर स्वामी,
सुगतमुनिः — बुद्धभगवान,
आकाशं — आकाश,
अनिलः — वायु,
शिवः — शिव,
शक्तिश्चइति और शक्ति
एभिः — इन इन (भिन्न २)
विकल्पैः — विकल्पों (नामों) से
त्वां — तुझ
भगवतीं — भगवती को ही
तां — उस
श्रुतिविषयतां — सुनने का विषय भिन्न भिन्न मत-मतान्तरों के सुनाने का विषय बनी हुई तुझ को)
उपगतां — बनी हुई को
सन्तः — श्रेष्ट पुरुष (तुझे)
अभिदधति — पुकारते हैं।

प्रविश्य स्वं मार्गं सहजदयया देशिकदृशा
षडध्वध्वान्तौघच्छिदुरगणनातीतकरुणाम्।

परानन्दाकारां सपदि शिवयन्तीमपि तनुं
स्वमात्मानं धन्याश्चिरमुपलभन्ते भगवतीम् ॥३४॥

पदच्छेद:

प्रविश्य स्वं मार्गं सहजदयया देशकदृशा
षट् अध्वध्वान्त ओघच्छिदुरगणनातीतकरुणाम् ।
परानन्द आकारा सपदि शिवयन्तीम् अपि तनुं
स्वम् आत्मानं धन्याः चिरम् उपलभन्ते भगवतीम् ॥३४॥

धन्याः	— भाग्यवान पुरुष	करुणाम्	— दया रूप (देवी को)
सहजदयया	— आपकी स्वाभाविक दया से	परानन्दाकारां	परमानन्द रूप
		तनुं अपि	— स्वरूप को भी
देशिकदृशा	— (तथा) उत्तम गुरु-जनों के अनुग्रह से	शिवयन्तीम्	— कल्याणमय बनाते हुए
स्वंमार्गं	— अपने (सुषुम्ना) मार्ग के द्वारा	भगवतीं	— भगवती के स्वरूप को
प्रविश्य	— प्रवेश करके (तथा)	स्वं आत्मानं	— अपना ही स्वरूप
षट्अध्व-	— छः मार्ग रूप	सपदि	— झटपट (निरायास)
ध्वान्तौघ-	— अन्धकार (अज्ञान) के समूह के	चिरं	— अनन्तकाल तक (बहुत जन्मों के उपरान्त)
च्छिदुर-	— काटने के लिए		
गणनातीत-	— (वे भाग्यवान भक्त-जन) अपार	उपलभन्ते	— जानते हैं ।

शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमणिमादिर्गुणगणः ।
अविद्या त्वं विद्या त्वमसि निखलं त्वं किमपरं
पृथक्तत्त्वं त्वत्तो भगवति न वीक्षामह इमे ॥३५॥

पदच्छेद।

शिवः त्वं शक्तिः त्वं त्वं असि समया त्वं समयिनी
त्वं आत्मा त्वं दीक्षा त्वं अयं अणिमा आदिः गुणगणः ।
अविद्या त्वं विद्या त्वं असि निखिलं त्वं किं अपरम्
पृथक् तत्त्वं त्वत्तो भगवति ! न वीक्षामहे इमे ॥३५॥

भगवति !	— हे भगवती,	गुणगणः	— (तुम ही) गुणों का समूह हो, (सत्त्व, रज, तम)
त्वम्	— तुम ही	त्वं	— तुम ही
शिवः	— शिवरूप हो,	अविद्या	— अज्ञानरूप हो,
त्वं	— तुम ही	त्वम्	— तुम ही
शक्तिः	— शक्तिरूप हो,	विद्या	— ज्ञानरूप हो,
त्वं	— तुम ही	निखल	— सभी कुछ
समया असि	— सिद्धान्त रूप हो,	त्वं असि	— तुम ही हो,
त्वं	— तुम ही	किं अपरं	— कौनसा दूसरा
समयिनी	— सिद्धान्त कर्त्री हो,	तत्त्वं	— ऐसा तत्त्व
त्वम्	— तुम ही	त्वत्तो	— तुम से
आत्मा	— आत्मा हो,	पृथक्	— भिन्न हैं
त्वम्	— तुम ही	इमे (वयं)	— ऐसे हम
दीक्षा	— उपदेशरूप भी हो	न वीक्षामहे	— इस बात को नहीं जानते हैं ।
त्वम्	— तुम ही		
अयं	— यह		
अणिमादिः	— अणिमादि आठ सिद्धियां हो		

असंख्यै प्राचीनैर्जननि जननैः कर्मविलया-
दग्ते जन्मन्यन्त गुरुवपुषमासाद्य गिरिशम् ।
अवाप्याज्ञां शैवीं क्रमतनुरपि त्वां विदितवा-
न्नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचनेनैवदिवसान् ॥३६॥

पदच्छेदः

असंख्यैः प्राचीनै जननि ! जननैः कर्म विलयात्
गते जन्मनि अन्त गुरुवपुषं आसाद्य गिरिशम् ।
अवाप्य आज्ञां शैवीं क्रमतनुः अपि त्वां विदितवान्
नयेयं त्वत्पूजास्तुति विरचनेन एव दिवसान् ।।३६।।

जननि ! — हे माता,
प्राचीनैः — पिछले
असंख्यैः — जो गिने नहीं जा सकते इतने
जननैः — जन्मों द्वारा
कर्मविलयात् कर्मों के नष्ट होने से
जन्मनि — जन्मों के
अन्तगते — अन्त होने पर (जीवन्मुक्त दशा प्राप्त करके भी)
गुरुवपुषम् — गुरुवर के स्वरूप
गिरिशम् — शिव को
आसाद्य — प्राप्त करके (साक्षात्कार करके)
शैवीं — शिवरूप
आज्ञां — सिद्धान्त को (अद्वैत चैतन्य मार्ग)
अवाप्य — पाकर (उसका मनन तथा निधिध्यासन करके)
क्रमतनुः अपि — सक्रम (मनुष्य) शरीर धारण करता हुआ भी
त्वां — तुझ को
विदितवान् — जानता रहूं (और)
त्वत्- — तुम्हारी
पूजास्तुति- — पूजा तथा स्तुति इत्यादि के
विरचनेन एव — बनाने और करने में ही
दिवसान् — इस जन्म के शेष दिन
नयेयम् — व्यतीत करूं। (यही मेरी प्रार्थना है)

यत्षट्पत्रं कमलमुदितं तस्य या कर्णिकाख्या
योनिस्तस्याः प्रथितमुदरे यत्तदोङ्कारपीठम् ।

तस्मिन्नऽन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृत्तां
श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि ॥३७॥

पदच्छेदः

यत् षट्पत्रं कमलं उदितं तस्य या कर्णिका आख्या
योनिः तस्याः प्रथितं उदरे यत् तत् ओंकार पीठम् ।
तस्मिन् अन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृत्तां
श्याम आकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि ॥३७॥

यत्	— जो		अन्दर
षट्पत्र	— छः पत्तों वाला	कुचभरनतां	— (ज्ञान क्रिया रूप) स्तनों के बोझ से झुकी हुई
कमलं	— कमल		
उदितं	— खिला हुआ		
तस्य	— उस कमल की	कुण्डलीतः	— कुण्डलिनी रूप से
या	— जो	प्रवृत्तां	— प्रवृत्त हुई
कर्णिकाख्या	— कर्णिका नाम वाली	श्यामाकारां	— श्याम वर्ण
योनिः	— योनि (मध्य) है	सकलजननीं	— सबको उत्पन्न तथा पालन करने वाली देवी को
तस्याः	— उस (योनि) के		
उदरे	— बीच में		
यत् तत्	— जो वह (अलौकिक)	सन्ततं	— बारम्बार
ओंकारपीठं	— ओंकार रूप पीठ	भावयामि	— मैं भावना करता हूं।
प्रथितं	— प्रकट है		
तस्मिन् अन्तः	उस ओंकार पीठ के		

भुवि पयसि कृशानौ मारुते खे शशाङ्के
सवितरि यजमानेऽप्यष्टधा शक्तिरेका ।

वहति कुचभराभ्यां या विनम्रापि विश्वं
सकलजननि ! सा त्वं पाहि मामित्यवश्यम् ।।३८।।

पदच्छेद:

भूवि पयसि कृशानौ मारुते खे शशाङ्के
सवितरि यजमाने अपि अष्टधा शक्तिः एका ।
वहति कुचभराभ्यां या विनम्रा अपि विश्वं
सकलजननि ! सा त्वं पाहि मां इति अवश्यम् ।।३८।।

सकलजननि !	हे जगत को उत्पन्न करने वाली मां,		(प्रमाता) में
या	— जो (तुम)	अष्टधा	— आठ प्रकार की
एका अपि	— एक रूप होते हुए भी	शक्तिः	— शक्ति
भुवि	— पृथिवी में,	कुचभराभ्यां	— स्तनों के बोझ से
पयसि	— जल में,	विनम्रा अपि	— झुकी हुई भी
कृशानौ	— अग्नि में,	विश्वं	— जगत् को
मारुते	— वायु में,	वहति	— धारण करती है
खे	— आकाश में,	सा त्वं	— वही तुम
शशाङ्के	— चन्द्रमा (प्रमेय) में,	मां	— मेरी
सवितरि	— सूर्य (प्रमाण) में,	पाहि	— रक्षा करो
यजमाने	— यज्ञ करने वाले	इति अवश्यम्	यह अवश्य बात है ।

इति श्रीमद्धर्माचार्यविरचितायां
पञ्चस्तव्यां
पञ्चमः सकलजननीस्तवः समाप्तः



